thearyasamaj.org

ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 21 सितम्बर 2014 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार 21 सितम्बर 2014 से 27 सितम्बर 2014

आ.कृ. 13 ● वि० सं०–2071 ● वर्ष 79, अंक 126, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 191 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,115 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल लारेंस रोड़ अमृतसर द्वारा महात्मा हंसराज जी के जन्म स्थल पर किया गया यज्ञ

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, लॉरेंस रोड़, अमृतसर द्वारा रत्न बजवाड़ा जैसी पावन भूमि पर जहां महान पुण्यात्मा हंसराज जी का जन्म हुआ था, वहाँ 9.8.14 को पावन यज्ञ का आयोजन किया गया।

इस पावन यज्ञ में आर्य समाज के सभी विशिष्ट सदस्य लोकल मैनेजिंग कमेटी के महानुभावों, पंजाब के कई डी.ए.वी. स्कूलों के प्रधानाचार्यों ने भाग लिया। इस पावन यज्ञ के मुख्य अतिथि श्री एस. के शर्मा, मंत्री, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली से थे। इनके अतिरिक्त प्रि. परमजीत जी, प्रि. अनीता मेहरा, प्रि. दर्शन कुमार जी, उनके सुपुत्र अकुंर शर्मा, प्रि. बोपाराय जी और स्वामी मदुरानंदा जी भी उपस्थित थे।

प्रधानाचार्या डॉ. नीरा शर्मा जी ने इस पावन यज्ञ में भाग लेने वाले सभी सदस्यों का स्वागत किया। पावन यज्ञ शुरू होने से पहले डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल की छात्राओं के द्वारा आर्य समाज के भजन गाए गए।

स्वामी मदुरा नंदा जी ने हिंसा के प्रति अपने विचारों को स्पष्ट किया। उन्होंने बताया कि हिंसा की तीन प्रवृतियाँ मनसा, वाचा, कर्मणा होती हैं जो कि हमारे मन, बोल और कर्म से सम्बन्धित है। इसलिए हमें अहिंसा का मार्ग अपनाना चाहिए।

प्रि. गौतम जी ने मित्रता को लेकर अपने विचार स्पष्ट किए। विद्यार्थियों को अपने पराये का भेद भाव न करने की प्रेरणा देते हुए उन्हें जीवन में मित्रता के प्रति प्रेम भाव रखने के लिए प्रोत्साहित किया। प्रि. परमजीत जी ने महात्मा हंसराज जी के जीवन के महत्वपूर्ण तथ्यों पर प्रकाश डाला। इसके उपरान्त पावन यज्ञ का प्रारंभ गायत्री मंत्र से हुआ। इस पावन यज्ञ में यजमान के रूप में श्री एस.के. शर्मा जी, डॉ. के.एन कौल जी, डॉ. नीरा शर्मा जी प्रि. गौतम जी, प्रि. भोपाराय जी विराजमान थे।

हवन यज्ञ के उपरान्त डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल की छात्राओं के द्वारा भजन गायन प्रस्तुत किया गया। कक्षा 5वीं की दो छात्राओं द्वारा महात्मा हंसराज के जीवन परिचय तथा उनकी उपलब्धियों के ऊपर प्रकाश डाला। कविता गायन भी किया गया। कुछ विद्यार्थियों द्वारा आर्य समाज के नियम भी मिलकर बोले गए।

मुख्य अतिथि श्री एस.के.शर्मा जी ने महात्मा हंसराज जी के जीवन के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं पर प्रकाश डाला। उन्होंने स्वामी दयानंद जी के प्रिय मंत्र ओ३म् विश्वानि देवः...के अर्थ को समझाया। वहाँ पर बैठे हर व्यक्ति के मन से द्वेष, लोभ, कपट जैसी प्रवृतियाँ दूर रहें ऐसी प्रार्थना उन्होंने हवन यज्ञ में की। श्री एस.के शर्मा जी ने यह भी बताया कि आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के तत्त्वावधान में महात्मा हंस राज के 150 वें वर्ष में रक्त दान सप्ताह आयोजित करने का निर्णय लिया गया।

डॉ.के.एन.कोल जी मैनेजर, डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल तथा प्रधानाचार्य डी.ए.वी. कॉलेज एवं प्रधान आर्य समाज लोहगढ़, अमृतसर जी ने सभी अतिथियों का धन्यवाद किया और विद्यार्थियों को महात्मा हंसराज जी के जीवन से प्रेरित होकर उनके जीवन मूल्यों और विचारधारा को अपने जीवन में अपनाने के लिए प्रेरित किया।

अबोहर में नव सत्र पर यज्ञ के साथ वर्ष भर के कार्यक्रम शुरू किए गये

गोपीचंद आर्य महिला कॉलेज में नवसत्रारम्भ पर भव्य हवन–यज्ञ सम्पन्न किया गया। जिसमें नव शिक्षण सत्र की सुखद शुभकामनाओं के अतिरिक्त कॉलेज के संस्थापक सेठ गोपीचंद जी को श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

5 अगस्त 2014 को आर्य युवा समाज की कॉलेज इकाई का अध्यक्ष उपाध्यक्ष व सचिव पद के लिए चुनाव सम्पन्न करके लगभग 150 छात्राओं को आर्य युवा समाज की सदस्यता ग्रहण करवाई।

छात्राओं में वैदिक मूल्यों एवम् आदर्शों पर आधारित स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती 'वेदरत्न' द्वारा लिखित लघु पुस्तिका 'धर्म–शिक्षा' एवं मुद्रित 'हवन–यज्ञ व सन्ध्या मंत्र' निशुल्क वितरित किए गए।

श्रावणी पर्व पर आयोजन हुआ। जिसमें फाजिल्का से आए धर्म शिक्षक श्री प्रेम नारायण विद्यार्थी ने संक्षिप्त वेद–कथा व पंच महायज्ञों पर प्रकाश डाला।

कॉलेज में 'कन्या भ्रूण हत्या' व 'भ्रष्टाचार' विषय पर अन्तः कक्षा वाद–विवाद प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसमें कु. शीनम व रंजना प्रथम, पूनम द्वितीय व अनुष्का तृतीय स्थान पर रही।

डी.ए.वी. टोहाना के छात्र को संस्कृत भाषण के लिए मिला राष्ट्रीय पुरस्कार

सीबी.एस.ई द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर संस्कृत सप्ताह का आयोजन किया गया, जिसके अन्तर्गत संस्कृत भाषा में लघु भाषण, प्रतियोगिता का आयोजन किया। अपनी रुचि के अनुसार विद्यालय के छात्र हर्षित बांसल से लघु भाषण को चुना और 'विद्यायाः महत्त्वम्' विषय पर अपने भाषण को रिकॉर्ड करके सीबीएस सी के कार्यालय भेज दिया।

हर्षित बांसल ने लघु भाषण प्रतियोगिता में राष्ट्रीय स्तर पर द्वितीय स्थान प्राप्त कर विद्यालय के साथ–साथ टोहाना शहर व अभिभावकों का नाम रोशन किया।

केन्द्रिय विद्यालय दिल्ली में आयोजित सम्मान समारोह में शिक्षा मंत्री स्मृति इरानी ने विजेता छात्र हर्षित बांसल को प्रशस्ति पत्र, मैड़ल व नगद पुरस्कार देकर सम्मानित किया।

डॉ. माला उपाध्याय प्राचार्या ने संस्कृत अध्यापिका और हर्षित बांसल के अभिभावकों को बधाई दी। विद्यालय के पदाधिकारियों ने भी विद्यालय की इस उपलब्धि के लिए हार्दिक बधाई व उज्ज्वल भविष्य की कामना की।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – श्री पूनम सूरी

hearyasamaj.org

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार 21 सितम्बर, 2014 से 27 सितम्बर, 2014

अविवेकी जन डूब जाते हैं

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

भि वेना अनूषत, इयक्षन्ति प्रचेतसः।
मज्जन्त्यविचेतसः।।

ऋग् ६.६४.२१

ऋषिः **काश्यपः**। देवता **पवमानः सोमः**। छन्दः **गायत्री**।

● **(वेनाः)** प्रभु–प्रेमी मेधावी जन, **(अभि अनूषत)** अभिमुख होकर (पवमान सोम प्रभु की) स्तुति करते हैं। **(प्रचेतसः)** प्रकृष्ट चित्तवाले विवेकी जन, **(इयक्षन्ति)** यज्ञ करने का संकल्प करते हैं। **(अविचेतसः)** अविवेकी जन, **(मज्जन्ति)** डूब जाते हैं।

● सोम प्रभु पवमान हैं, जग को पवित्र करने वाले हैं। जो मलिनता संसार में कई कारणों से उत्पन्न होती है उसे विविध साधनों से पवित्र करनेवाले सोम प्रभु यदि न होते तो मलिनता इतनी बढ़ जाती कि प्राणियों का जीवित रहना कठिन हो जाता। वे मानव के हृदय को भी पवित्र करनेवाले हैं, परन्तु उन्हीं के हृदय को पवित्र कर सकते हैं जो अपना हृदय पवित्र होने के लिए उन्हें देते हैं। प्रभु–प्रेमी मेधावी जन सोम प्रभु के अभिमुख हो उनके प्रति प्रणत होते हैं, उनकी स्तुति करते हैं, उनकी पावनता का गुणगान करते हैं, उन्हें आत्म–समर्पण करते हैं। परिणामतः वे 'प्रचेताः' बन जाते हैं, उनका चित्त प्रकृष्ट, पवित्र, ज्ञानमय और विवेकयुक्त हो जाता हैं। 'प्रचेताः' मनुष्य दीर्घद्रष्टा होते हैं। जिस यज्ञ को अन्य लोग निरर्थक समझते हैं, उन्हें वही प्यारा होता है। वह अपने जीवन में यज्ञ करने का संकल्प लेते हैं। वे सोम–यज्ञ करते हैं, सोम प्रभु के नाम से यज्ञ में आहुतियाँ डालते हैं, 'सोम' प्रभु का भजन–कीर्तन करते हैं और उससे प्रेरणा पाकर स्वयं भी साक्षात् 'सोम' बन जाते हैं। उनके जीवन में सोम–सदृश रसमयता, मधुरता और पावनता आ जाती है। 'सोम' के आदर्श को अपने सम्मुख रखते हुए वे अन्य यज्ञों का भी आयोजन करते हैं। 'सोम' प्रभु पावनता के यज्ञ को चला रहे हैं, वे भी समाज को पावन करते हैं। 'सोम' प्रभु सृष्टि–यज्ञ चला रहे हैं, वे भी सर्जनात्मक कार्यों को करते हैं। 'सोम' प्रभु पालन–पोषण और पूर्ति का यज्ञ कर रहे हैं, वे भी निर्बलों का पालन करते हैं, अपुष्टों को पुष्टि देते हैं, अपूर्णों के दोषों को दूर कर उनके छिद्र भरते हैं। यज्ञमयी नौका पर चढ़कर वे भव–सागर से पार हो जाते है। परन्तु जो 'अविचेताः' हैं, अविवेकी हैं, अल्पदर्शी हैं, वे न 'सोम' प्रभु का स्तवन करते हैं, न यज्ञ करते हैं। परिणामतः वे भव–सागर में डूब जाते हैं और दुर्गति पाते हैं। ❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

दो रास्ते

● महात्मा आनन्द स्वामी

पिछले अंक में पांचवें दिन की कथा आरंभ हुई तो स्वामीजी ने पिछले चार दिनों में जिन पाँच शब्दों की व्याख्या की, उनको एक बार फिर दोहराया तथा उनके अर्थ को स्पष्ट किया और फिर कहा कि इन पाँच शब्दों के अतिरिक्त तीन शब्द और हैं – ब्रह्मा, विष्णु और बृहस्पति जिनके अनुसार चलें तो श्रेयमार्ग पर चलने की प्रेरणा मिलेगी और प्रेयमार्ग का सुख मिलेगा।

'विष्णु' शब्द का अर्थ बताते हुए स्वामीजी ने कहा कि हमें विष्णु की तरह सर्वव्यापक बनना है और अपने दिल में विशालता पैदा करनी है। और संकुचितता को छोड़ना है। प्रसंगवश उन्होंने महर्षि दयानन्द का ध्येय भी प्रस्तुत किया और कहा कि आर्यसमाज को साम्प्रदायिकता का गढ़ क्यों बनाया जा रहा है? फिर विष्णु बनने के लिए साधना की आवश्यकता पर बल दिया और दक्षिण अमरीका के देश सूरीनाम की अपनी यात्रा का वर्णन किया जहाँ एक मंदिर में विष्णु की मूर्ति के समक्ष उन्होंने भाषण दिया था। विष्णु के चार हाथों में – शंख, चक्र, गदा और पद्म का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा, विष्णु बनना है, उसके मार्ग पर चलना है तो हमें इन चारों चीजों को समझना और अपनाना होगा। 'शंख' का अर्थ–*ऊँची आवाज़ करते हुए* उन्होंने बताया कि देश–विदेश में अपने संदेशों को पहुंचाने के लिए जो भी साधन प्रयोग किए जा रहे हैं वे सारे शंख हैं। जिस जाति या देश का यह शंख जितनी ऊँची आवाज़ वाला होगा, उसका संदेश, उसके विचार, उसकी बात, उतने ही ज्यादा लोग सुनेंगे। उन्होंने कहा–कोई भी देश, कोई भी जाति, कोई भी समाज, प्रचार और प्रसार के बिना आगे नहीं बढ़ सकता और यह हर युग में होता रहा है। शंख के बिना तो भगवान् विष्णु का काम भी नहीं चला। इसके बाद आर्यसमाज में आयी प्रचार–प्रसार की कमजोरी और संन्यासियों तथा विद्वानों के अभाव की ओर इशारा करते हुए आर्यसमाजों के मंचों, उनके विद्यालयों और आर्यसमाजों के साधु–संन्यासियों, ब्रह्मचारियों, वानप्रस्थियों के लिए वेद का स्वाध्याय करने के लिए किसी प्रकार का प्रावधान न होने पर दुःख प्रकट किया और कहा कि ऐसी दशा में आर्यसमाज कमजोर नहीं होगा तो क्या होगा?

अब आगे...

आजकल साधारणतया यह शिकायत होती है कि सनातनधर्म का प्रचार बहुत है, लोग 'वैष्णों देवी' बहुत जाते हैं, देवी–जागरण में बहुत सम्मिलित होते हैं, मूर्ति–पूजा बहुत करते हैं, हरिद्वार बहुत जाते हैं, दूसरे तीर्थों पर बहुत।

यह शिकायत ठीक है।

परन्तु कभी हमने सोचा कि यह सब–कुछ क्यों हो रहा है? इसलिए कि इस में डेढ़ लाख साधु हरिद्वार के माहात्म्य का, वैष्णो देवी की पूजा का और इस हरिद्वार में, ऋषिकेश में, उत्तर काशी में, चित्रकूट में, नर्मदा नदी के तट पर, मथुरा में, वृन्दावन में, काशी में, प्रयाग में और कितने ही दूसरे शहरों में बड़े–बड़े आश्रम हैं, मठ हैं। उनमें कोई भी साधु, संन्यासी, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी जाकर रह सकता है। एक–दो दिन के लिए नहीं, बल्कि वर्षों के लिए रह सकता है। उसे खाना मिलता है, रहने को स्थान मिलता है, कभी–कभी कपड़ा भी मिलता है, औषध आदि भी, दूसरी वस्तुएँ भी। और आर्यसमाज के पास क्या है?

मैं जब 'प्रादेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा' का मन्त्री और प्रधान था, तब एक सौ भजनीक और उपदेशक उसमें काम करते थे। अब उसमें तीन–चार या कुछ ज़्यादा उपदेशक रह गए हैं। 'अढ़ाई टोटरू और फत्त बागबान' वाली बात हो गई है। तब तुम्हारा प्रचार कौन करेगा?

आज से 60 वर्ष पहले स्वामी विवेकानन्द जी गए अमेरिका में। कई भाषण उन्होंने दिए। कुछ जगहों पर अपने गुरू परमहंस श्री रामकृष्ण के नाम पर आश्रम बनाने का विचार भी किया। भारत में आकर उन्होंने अपना यह विचार भारत

thearyasamaj.org

की 'रामकृष्ण आश्रम सोसायटी' के समाने रखा। अब अमेरिका में 'श्री रामकृष्ण' के नाम पर बारह आश्रम हैं। हर आश्रम के अन्दर बीस–बाईस साधु हर समय उपस्थित रहते हैं। और आर्यसमाज का कोई संन्यासी नहीं, कोई उपदेशक नहीं, कोई प्रचारक नहीं। आर्यसमाजवाले केवल यहाँ बैठकर "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" (सारी दुनिया को आर्य बनाओ) का जयघोष लगाते रहते हैं। अरे! यह बात क्या घरों में बैठे–बैठे हो जाएगी? कभी नहीं होगी। मेरी बातों का बुरा न मानना! मेरे दिल में एक आग लगी है कि मेरी आँखों के सामने आर्यसमाज किस घोर पतन की ओर जा रहा है! रोशनी का एक प्रकाश–स्तम्भ पैदा किया था महर्षि दयानन्द ने । आज के लीडर उसे बुझाने के लिए लगे हुए हैं। उनके आपसी झगड़े ही समाप्त नहीं होते, प्रचार कैसे करेंगे? अच्छा भाई, न करो। परन्तु यह याद रखो, शंख के बिना विष्णु कोई होता नहीं, और विष्णु बने बिना 'श्रेय मार्ग' पर चलने की बात भी नहीं होती।

विष्णु के दूसरे हाथ में है 'चक्र'।

चक्र का अर्थ है गति, और विष्णु का चक्र केवल चलता नहीं, बहुत तेज़ी से चलता है; बिजली भी इससे पीछे रह जाती है। साधारण लोगों के लिए, जातियों के लिए, देशों के लिए 'चक्र' का सीधा–सा अर्थ है– आगे बढ़ो, तेज़ी से आगे बढ़ो, चलते चलो, चलते चलो–

"चरैवेति, चरैवेति, चरैवेति।"

'चलते जाओ, रुको नहीं, उन्नति की ओर, अपने लक्ष्य की ओर।' जो देश, जो समाज, जो जातियाँ ऐसा करती हैं, वे उन्नति के मार्ग पर निरन्तर आगे बढ़ती हैं। जो मनुष्य ऐसा करते हैं वे विष्णु हैं।

विष्णु के तीसरे हाथ में है 'गदा'।

'गदा' का अर्थ है 'शक्ति' – क्षात्रशक्ति, शारीरिक बल, भुजाओं का बल, सेना का बल, शस्त्रों का बल।

जिस प्रकार भुजाएं न हों तो मनुष्य कुछ कर नहीं सकता, ऐसे ही क्षात्र शक्ति के बिना देश या जाति भी कुछ नहीं कर सकते। विष्णु बनने, विष्णु की तरह बनने और विष्णु को अपना आदर्श मानकर चलने का सीधा–सा अर्थ है कि जिस प्रकार उनके पास 'गदा' है वैसे ही तुम्हारे पास क्षात्र शक्ति हो, ऐसी शक्ति जो अन्याय और अत्याचार को रोक सके; जो निर्बल लोगों की, सच्चाई की, न्याय की, देश की रक्षा कर सके। शरीर में बल हो, तभी तो आदमी सब–कुछ करेगा। परन्तु हमारे देश का दुर्भाग्य कि यहाँ कुछ लोगों ने ग़लत विचारों का प्रचार आरम्भ कर दिया। स्थान–स्थान पर उन्होंने कहा– "जगत् तो मिथ्या है, तीन काल में मिथ्या है।" स्थान–स्थान पर वे गाने लगे–

क्या तन माँजत रे, आखिर माटी में मिल जाना।

अरे भाई! माटी में तो मिलेगा आखिर, परन्तु इसका अर्थ क्या यह है कि अभी से मिट्टी में लेट जाओ? नहाओ नहीं, खाओ नहीं, पियो नहीं, शरीर की रक्षा नहीं करो, इसको दृढ़ और बलवान् नहीं बनाओ? नहीं बनाओगे, मेरे भाई, तो इस दुनिया में कैसे रहोगे? अत्याचार का, अन्याय का, पाप का मुक़ाबला कैसे करोगे? विचित्र–विचित्र बातें कही इन लोगों ने–यह नहीं खाओ, वह नहीं खाओ।

अपनी एक बात सुनाऊँ आपको।

मैं गया ऋषिकेश से गरुड़ चट्टी। वहाँ एक महात्मा रहते थे, उनसे 'प्राण उत्थान' (प्राण को ऊपर उठाने) का ढँग सीखना चाहता था। महात्मा जी को गुरू मानकर उनसे इस ढँग को सिखाने की प्रार्थना की तो वह बोले– "इसके लिए कुछ साधना करनी होगी।"

मैंने पूछा–"क्या कुछ करना होगा?"

वह बोले–"रोटी नहीं खाना, चावल नहीं खाना, सब्जी नहीं खाना, दाल नहीं खाना, फल नहीं खाना, दूध नहीं पीना, दही नहीं खाना, पनीर नहीं खाना, लस्सी नहीं पीना, कोई खुश्क मेवा, बादाम, किशमिश, मुनक्का, अखरोट, मूँगफली आदि नहीं खाना।"

मैंने घबराकर कहा–"फिर क्या विष खाऊँ?"

वह बोले–"नहीं, विष भी नहीं खाना।"

कुछ ऐसा धर्म चल गया हमारे देश में कि जो थोड़ा खाए वह धर्मात्मा, जो बिल्कुल न खाए वह देवता। परन्तु इस प्रकार देश का काम कैसे चलेगा भाई? देश की रक्षा के लिए, देश की उन्नति के लिए, देय की आन के लिए आवश्यक है कि यहाँ बलवान्, दृढ़, स्वस्थ और हृष्ट–पुष्ट क्षत्रिय हों। परन्तु इस गलत, विचार धारा ने न केवल क्षत्रियों को निर्बल बना दिया है, बल्कि 'क्षत्रिय' शब्द को बदलकर 'खत्री' बना दिया और खत्री का अर्थ यह किया गया।

खत्री सो जो खतारा करे,
धोती फड़के अन्दर वड़े।

अर्थात् 'खत्री वह है जिसको हर समय भय लगा रहे। थोड़ा–सा भी भय हो तो धोती पकड़ के घर के अन्दर घुस जाए। ऐसे ही खत्रियों के सम्बन्ध में हिन्दी के एक कवि ने कहा–

सिल कटी बर्छी गई, गए तीर तलवार।
घड़ी छड़ी चश्मा भए, क्षत्रिन के हथियार।।

ऐसे लोग क्या चीन का या किसी भी दूसरे आक्रमण करने वाले देश का सामना कर सकेंगे? देश पर अत्याचार करने वालों, आक्रमण करने वालों और अन्याय करने वालों को मुँहतोड़ उत्तर दे सकेंगे? इन लोगों को तो आरामतलबी की आदत हो गई है। हर जगह इन्हें 'एयर–कण्डीशन' (Air-conditioned) होनी चाहिए। मकान में 'एयर कण्डीशन', कार्यालय में 'एयर–कण्डीशन', सिनेमा में 'एयर–कण्डीशन', लेक्चर के हॉल में 'एयर–कण्डीशण्ड' होना चाहिए इनके लिए।

इतनी आरामतलबी भी क्या हुई?

याद रखो! इस दुनिया के अन्दर निर्बल मनुष्य के लिए, निर्बल जाति के लिए और निर्बल देश के लिए कोई स्थान नहीं। चीन ने धोके से भारत पर आक्रमण किया, उसकी सेना मार–काट करती हुई आगे बढ़ने लगी तो पं. जवाहरलाल जी ने कहा– "मैं अब समझा हूँ कि इस दुनिया में सच्चाई और न्याय के साथ–साथ बल भी आवश्यक है। बल न हो तो बलवान् देश निर्बल देशों के साथ न्याय नहीं करते, उनकी सच्चाई को भी नहीं देखते।"

याद रखो! इस दुनिया के अन्दर निर्बल मनुष्य के लिए, निर्बल जाति के लिए और निर्बल देश के लिए कोई स्थान नहीं। चीन ने धोके से भारत पर आक्रमण किया, उसकी सेना मार–काट करती हुई आगे बढ़ने लगी तो पं. जवाहरलाल जी ने कहा– "मैं अब समझा हूँ कि इस दुनिया में सच्चाई और न्याय के साथ–साथ बल भी आवश्यक है। बल न हो तो बलवान् देश निर्बल देशों के साथ न्याय नहीं करते, उनकी सच्चाई को भी नहीं देखते।"

यह बल आता है शरीर को, जाति को बलवान् बनाने से । जवाहर लाल जी ने इसे समझा, देश की सैनिक शक्ति बढ़ाई, क्षात्रधर्म को जगाया। परिणाम क्या हुआ कि उसके बाद पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण किया तो जवाहरलाल के पैदा किए हुए क्षात्र बल ने पाकिस्तान के छक्के छुड़ा दिए। मार्शल अयूब ने किया था आक्रमण, आक्रमण का उत्तर मिला तो चिल्लाने लगे–कोई हमें बचाओ, हमारे लिए भय जाग उठा है।

देखो! सुनो! मैं बार–बार कहता हूँ कष्ट और क्लेश के दिन आनेवाले हैं। अपने बच्चों को दृढ़ और बलवान् बनाओ ताकि आनेवाले हालात का मुक़ाबला (सामना) कर सकें। अपने बच्चों को आरामतलब न बनाओ! बचपन में जो लोग दृढ़ बनते हैं, वे आगे चलकर भी दृढ़ रहते हैं, दुःखों और कष्टों का सामना कर सकते हैं, दुःख और कष्ट उनपर हावी नहीं होते अपितु वे दुःख और कष्टों पर हावी हो जाते हैं।

'महाभारत' में भीष्म पितामह के बचपन की कथा आती है। बचपन में उनका नाम देवव्रत था। वह अपनी माता के साथ अपने ननिहाल में थे। पत्थरों के ऊपर खेल रहे थे। एक चट्टान पर गिरे तो क्या हुआ? यह नहीं कि देवव्रत की हड्डी–पसली टूट गई; बल्कि यह कि वह चट्टान जिसपर देवव्रत गिरा था, टूटके चकनाचूर हो गई।

कैसे हुई यह बात? इस प्रकार कि भीष्म को उसकी माता ने बचपन से दृढ़ बनाया, बनवान् बनाया। आजकल का कोई बच्चा इस प्रकार पत्थर पर गिरता तो उसकी कई हड्डियाँ टूट जातीं, उसे अस्पताल में ले जाना पड़ता, कई दिन अस्पताल में रखना पड़ता। परन्तु उस समय पैदा होते ही बालक को शिक्षा दी जाती थी–

अश्मा भव, परशुर्भव, हिरण्यमस्तृतं भव!

'अश्मा भव!' – पत्थर बन मेरे बेटे!

आप कहेंगे, यह कैसी बात है? कैसा आशीर्वाद है? बच्चा पैदा हुआ, खुशी के बाजे बज रहे हैं, घर में खुशी के दीये जल रहे हैं और पिता अपने पुत्र को कहता है, "पत्थर बन जा?" हाँ, यही कहता था उस ज़माने का पिता। बच्चे के कान में कहता था–"बेटा, सुन! यह संसार बहुत भयंकर है, इसमें सुनसान और उजाड़ जंगल हैं, इसमें हिसक पशु भी है, साँप भी, बिच्छू भी, ऐसे हाथी भी जो तुझे पाँवों के नीचे रौंद देंगे, यहाँ तूफ़ान उठेंगे, बाढ़ें आएगी। तू उस चट्टान की तरह बन, जिसके साथ समुद्र की लहरें आ–आकर टकराती हैं और चट्टान का कुछ बिगाड़े बिना पीछे हट जाती हैं।"

और फिर–

परशुर्भव!

केवल चट्टान नहीं बल्कि कुल्हाड़ा बन। छुरी खरबूज़े पर गिरे तो खरबूजा कट जाय, खरबूज़ा छुरी पर गिरे तो भी खरबूजा ही कटे, छुरी नहीं–ऐसा बन कि तू किसी पर आक्रमण करे तो उसके टुकड़े–टुकड़े हो जाए, तुझपर कोई आक्रमण करे तो भी वह टुकड़े–टुकड़े हो जाय।

और उसके बाद–

क्रमशः

पुरुषार्थ–चतुष्टय में मोक्ष का स्थान मोक्ष

● डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये 'पुरुषार्थ–चतुष्टय' के रूप में प्रसिद्ध हैं।

चतुर्थ पुरुषार्थ का नाम है – **'मोक्ष'**। इसे 'परम–पुरुषार्थ' भी कहते हैं। प्रायः अर्थ और काम की चकाचौंध के सामने अधिकांश अविवेकी मनुष्य मोक्ष को शुष्क और नीरस समझकर उसका नाम ही सुनकर घबरा जाते हैं। वे लोग समझते हैं कि – भला मोक्ष में क्या आनन्द मिलेगा ? वहाँ न तो यह शरीर ही रहेगा और न ये प्रियतम विषय ही मिलेंगे, केवल यह आत्मा परमात्मा में विलीन हो जायेगा। तब इससे हमें क्या आनन्द मिलेगा ?

परम पुरूषार्थ मोक्ष – समस्त वेद, शास्त्र, महान् से महान् ज्ञानी, ऋषि–महर्षि, सन्त, मुनि–महात्मा आदि लोकोत्तर प्रतिभाशाली सभी महापुरुषों ने – संसार भर के एक से एक सुखों की छानबीन करके, उन्हें खूब अच्छी तरह से परख करके, अन्त में बिना मतभेद के सभी ने एक स्वर से यही एक अकाट्य–अटल सिद्धान्त सुस्थिर कर दिया है कि–

'वास्तव में सबसे उत्तम, सबसे सुखमय और सब को अभीष्ट, निरतिशय अखण्ड आनन्दमय महान् सरस पुरुषार्थ 'मोक्ष' ही है।'

इसीलिए विष्णु–पुराण में कहा है कि –

इति संसार–दुःखार्क–ताप–तापित–चेतसाम्।
विमुक्ति–पादपच्छायामृते कुत्र सुखं नृणाम् ।।

–(6 अंश, 5 अ0, 57 श्लोक)

अर्थात् – सांसरिक दुःखरूपी प्रचण्ड सूर्य के ताप से जिनका अन्तःकरण सन्तप्त हो रहा है, उन पुरुषों को मोक्षरूपी कल्पवृक्ष की शीतल छाया को छोड़कर और कहाँ सुख मिल सकता है ?

अतएव मोक्ष ही समस्त पुरुषार्थों और समस्त सुखों का सम्राट् है। इसकी प्राप्ति किसी–किसी विरले ही भाग्यशाली को हो पाती है, अधिकांश लोगों के लिए तो यह आदर्श मात्र है।

मुक्ति (मोक्ष) का अर्थ – मोक्ष का अर्थ है – **'मुच्यते सर्वदुःखबन्धनैर्यत्र स मोक्षः।'** अर्थात् जिस पद को पाकर जीव आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक आदि सम्पूर्ण दुःख बन्धनों से मुक्त हो जाता है – उसे मोक्ष कहते हैं। इसका नाम मुक्ति भी है। मुक्ति शब्द 'मुच्लृ मोचने' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय होकर बना है। इसका अर्थ होता है – (बँधे हुए प्राणी का) बन्धनों से छूट जाना।

मुक्ति की महत्ता – विवेकी पुरुषों की दृष्टि में सांसारिक सुख भी परिणाम में नीरस होने के कारण दुःखरूप ही है। अतः सांसारिक सुख के अनुभव के समय मनुष्य को जो–जो भी वस्तु सुखरूप प्रतीत होता है, सूक्ष्म विचार करने पर वह सब वास्तव में दुःखरूप ही है। इसीलिए महर्षि पतंजलि ने इस विषय में कितना सुन्दर कहा है कि–

परिणाम–ताप–संस्कार–दुःखैर्गुणवृत्ति–विरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ।

– (योग सूत्र 2.5)

अर्थात्–विषय–सुख नित्य सुख नहीं है। क्षणिक और दुःख से मिश्रित है क्योंकि इसे प्राप्त करने में पहले बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है और बाद में फिर उसके अनुभव के समय में भी प्रायः कोई न कोई दुःख वहाँ रहता ही है। अतः संसारी पुरुष को ऐसे सुख का अनुभव कभी भी नहीं होता, जिसके अनुभव के समय बाह्य या आन्तरिक कोई भी दुःख, मन्द–रूप से भी न रहे। इसके साथ ही साथ सांसारिक सुख परिणाम में विनाशी है, विषय–सुख का नाश अवश्यंभावी है और उसके नाश होते समय फिर बड़ा भारी दुःख होता है। अतएव यह सुख भविष्य में दुःख का हेतु है और वर्तमान समय में भी उसके विनाश की सम्भावना का भय लगा ही रहता है। इस प्रकार विषयों से प्राप्त होनेवाला सुख, दुःखों से ओत–प्रोत (अर्थात् सना हुआ) है। अतः ऐसा सुख परिणाम में शोक रूप में परिणत हो जाता है।

महर्षि बादरायण के मत में जैमिनि और औडुलोमि के विचारों में कोई विरोध नहीं है। आचार्यों के वचनों का समन्वय करते हुए स्वामी दयानन्द सरस्वती लिखते हैं–"स्वशक्ति से जीवात्मा मुक्ति में रहता है, मुक्ति में जीव का न तो स्थूल शरीर रहता है और न सूक्ष्म शरीर। इस लोक में जीवात्मा अपने शरीर के माध्यम से इन्द्रियों के गोलक द्वारा अपना कार्य करता है, किन्तु मुक्ति में अपनी स्वशक्ति–सामार्थ्य से संकल्प–शरीर द्वारा सब आनन्द भोगता है।"

बृहदारण्यक उपनिषद् (2.1.4) में एक प्रसिद्ध कथा है। जब महर्षि याज्ञवल्क्य गृहस्थाश्रम का परित्याग कर संन्यास में प्रविष्ट होने लगे तब उन्होंने अपनी भार्या मैत्रेयी को बुलाकर कहा– "मैं इस गृहस्थाश्रम में पड़े रहना नहीं चाहता, मैं परलोक–साधन करना चाहता हूँ, आओ मैं कात्यायनी और तुम्हारे लिए अपने धन का विभाजन कर दूँ।" याज्ञवल्क्य की बात सुनकर विदुषी मैत्रेयी ने पूछा– "यदि यह सारी पृथिवी धन–धान्य से परिपूर्ण होकर मेरी हो जाये तो **'किं तेनामृता स्याम्'** क्या मैं उससे अमरत्व को प्राप्त कर सकूँगी।" महर्षि ने उत्तर दिया– "जैसे साधन–सम्पन्न व्यक्ति सुखचैन से जीवन निर्वाह करते हैं, वैसा ही तुम्हारा जीवन भी हो जायेगा, **'अमृतत्वस्य तु न आशा अस्ति वित्तेन'** धन–धान्य से अमरत्व पाने की तो तनिक भी आशा नहीं है।" तब मैत्रेयी ने कहा–**"येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम्"** जिस धन से अमरत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती उसे मैं लेकर क्या करूँगी।" इस उत्तर को सुनकर महर्षि याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को मुक्ति के सम्बन्ध में जो आध्यात्मिक उपदेश दिया वह भारतीय धर्म तथा दर्शन के इतिहास में अमर है।

दुःखों से छूटकर अमृत और आनन्द को प्राप्त करना ही मुक्ति है। हम दुःखों से छूटकर अमृत और आनन्द को प्राप्त हों, क्योंकि दुःख ही मृत्यु है तथा मुक्ति ही अमृत या आनन्द है। **'उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्'**– (ऋ० 7.51.12) अर्थात् हे भगवान्! मुझे मृत्यु आदि दुःखों से छुड़ाओ, अमृत (अर्थात् मोक्षानन्द)से नहीं। हे प्रभो! मृत्यु से हमें उसी प्रकार छुड़ाना जिस प्रकार खरबूजा अपने वृन्त से पकने पर छूट जाता है।

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते।
कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव।।

– (ऋ० 9.113.11)

हे परमात्मन्! जहाँ आनन्द, मोद, मुद और प्रमुद हैं और जहाँ सब कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं,उस मोक्ष–धाम में मुझे अमर कीजिए।

विविध शास्त्रों के अनुसार 'मुक्ति का स्वरूप'–

अपवर्ग (मोक्ष) – जन्मरूप दुःख से अत्यन्त निवृत्ति अर्थात् छुटकारे का नाम अपवर्ग = मोक्ष है – **तदत्यतविमोक्षोऽपवर्गः'** (न्यायदर्शन 1.1.20) दुःख से अत्यन्त निवृत्ति का उपाय बताते हुए महर्षि गोतम लिखते हैं–

दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः

–(न्याय सूत्र 1.1.2)

अर्थात्– तत्त्वज्ञान से मिथ्या ज्ञान का नाश होता है, मिथ्या ज्ञान के नाश से दोषों का अभाव होता है, दोषाभाव से प्रवृति नष्ट होती है, प्रवृति के नष्ट होने से जन्म के अभाव में दुःख का भी नाश हो जाता है।

न्याय दर्शन के अनुसार प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रह स्थान– इन सोलह पदार्थों के तत्त्वज्ञान से मोक्ष–प्राप्ति होती है।

महर्षि कणाद की दृष्टि में 'शरीरधारक मनःकर्म के अभाव होने पर शरीर से आत्मा के संयोग का अभाव होने पर शरीर से आत्मा के संयोग का अभाव और शरीरान्तर का प्रादुर्भाव न होना ही मोक्ष कहलाता है।'

तदभावे संयोगाभावोऽप्रादुर्भावश्च मोक्षः

–(वैशेषिक दर्शन 5.2.47)

सांख्यकार कपिल तीनों प्रकार के दुःखों से अत्यन्त छूट जाने को मुक्ति कहते हैं, यही 'परम पुरुषार्थ' है–

अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः

–(सांख्यसूत्र 1.1)

महर्षि पतंजलि के अनुसार – पुरुषार्थ शून्य गुणों का (जिनका पुरुषार्थ, कर्त्तव्य, प्रयोजन, समाप्त हो चुका है, ऐसे त्रिगुणात्मक चित्त का) अपने कारण –प्रकृति में लीन हो जाने का नाम मोक्ष है, अथवा ज्ञानशक्ति रूप जीवात्मा का सर्वद्रष्टा परमात्मा के स्वरूप में प्रतिष्ठित होने का नाम **कैवल्य मोक्ष** है।

पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति –

(योग सूत्र 4.34)

मोक्ष में आत्मा ब्रह्म सम्बन्ध रूप से अवस्थित रहता है, ऐसा आचार्य जैमिनि मानते हैं–

ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः

–(वेदान्तसूत्र 4.4.5)

महर्षि बादरायण के मत में जैमिनि और औडुलोमि के विचारों में कोई विरोध नहीं है। आचार्यों के वचनों का समन्वय करते हुए स्वामी दयानन्द सरस्वती लिखते हैं– "स्वशक्ति से जीवात्मा मुक्ति में रहता है, मुक्ति में जीव का न तो स्थूल शरीर रहता है और न सूक्ष्म शरीर। इस लोक में जीवात्मा अपने शरीर के माध्यम से इन्द्रियों के गोलक द्वारा अपना कार्य करता है, किन्तु मुक्ति में अपनी स्वशक्ति–सामार्थ्य से संकल्प–शरीर द्वारा सब आनन्द भोगता है।"

(सत्यार्थप्रकाश, नवम समुल्लास)

मुक्ति में जीव को प्राप्त होनेवाला सामर्थ्य या शक्ति का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में है।

शेष पृष्ठ 05 पर

thearyasamaj.org

उत्कृष्ट शङ्का समाधान

● स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक

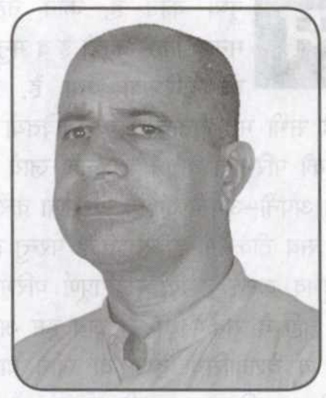

शंका–क्या कार्य में 'भावना' महत्त्वपूर्ण होती है, इससे 'फल' में अंतर आता है?

समाधान– जी हाँ। दो व्यक्ति आपको एक जैसी क्रिया करते हुए दिखाई देंगे, लेकिन दोनों को फल एक जैसा नहीं मिलेगा, फल अलग–अलग होगा। बाह्य–क्रिया एक जैसी होगी, पर फल में अंतर होगा क्योंकि उनकी भावना में अंतर है।

एक सैनिक ने शत्रु देश के सैनिक को मार डाला और एक नागरिक ने दूसरे नागरिक को मार डाला। हत्या दोनों ने की। बाह्य–क्रिया दोनों घटनाओं में एक जैसी है। लेकिन क्या फल दोनों को एक जैसा मिलेगा? नहीं, अलग–अलग मिलेगा। सैनिक को ईनाम मिलेगा और नागरिक को दंड मिलेगा। दोनों में भावना का अंतर है। सैनिक की भावना है–देश की रक्षा करना और नागरिक की भावना है–अपने स्वार्थ के लिए मारना।

कर्म का फल केवल आपकी क्रिया पर ही आधारित नहीं है। क्रिया के साथ 'भावना' भी जुड़ती है, तब फल का निर्धारण होता है।

बाह्य–क्रिया एक जैसी होने पर भी अगर भावना में अंतर है, तो फल में अंतर आ ही जाएगा। सकाम–भावना से करोगे तो भिन्न फल होगा। अक्षरधाम में जो घटना हुई उसमें क्या हुआ? सैनिकों ने आतंकवादियों को मार डाला। शत्रुओं (आतंकवादियों) को मारना, यह देश की रक्षा का काम है। इसमें निःसंदेह सैनिकों को पुण्य मिलेगा। नियम है कि–बड़े से बड़ा काम भी अगर बुरे लक्ष्य के लिए किया जाए, तो संसार उसे कोई महत्त्व नहीं देता है।

शंका–अन्यायपूर्वक मिले दुःख या हानि की ईश्वर क्षतिपूर्ति करता है। जैसे सेठ के यहाँ चोर ने चोरी की, इस अन्याय की क्षतिपूर्ति ईश्वर सेठ को किस प्रकार करेगा?

समाधान– भगवान कैसे पूर्ति करेगा, कहाँ करेगा, कब करेगा, वो हम नहीं जानते। यह बात हमारी समझ में नहीं आई।

● कर्मफल तो इतना विचित्र है कि इसको कोई भी मनुष्य पूरा–पूरा नहीं जान सकता। व्यक्ति उसे बहुत मोटा–मोटा ही जान सकता है।

ईश्वर की कर्म–फल व्यवस्था, 'न्याय–व्यवस्था' बड़ा विस्तृत और जटिल विषय है, सूक्ष्म विषय है। बड़े–बड़े ऋषि–मुनियों ने इस विषय पर बहुत चिन्तन किया, बहुत मनन किया और कुछ बातें जो उनको समझ में आई, वो उन्होंने बताईं। फिर आगे चलकर के उन्होंने भी हाथ खड़े कर दिए कि–"भई अपने बस का नहीं है, यह बहुत कठिन है। इसको कोई भी नहीं समझ सकता।"

● इतना जरूर निश्चित है कि जो भी क्षति हुई, जो भी नुकसान हुआ, उसकी पूर्ति तो मिलेगी, इसमें कोई शंका नहीं है। इस बात को एक उदाहरण से समझेंगे–

एक सेठ के यहाँ चोरी हुई। पुलिस पीछे लग गई। चोर पकड़ा गया और चोरी में जो सामान गया था, वह सामान भी मिल गया था। अब न्याय करना है, तो दो पात्र हैं हमारे सामने, एक तो सेठ और एक चोर। सेठ के यहाँ चोरी हुई, चोर ने चोरी की। अब दोनों के साथ न्यायाधीश कुछ न कुछ व्यवहार करेगा। चोर को तो न्यायाधीश जेल में डाल देगा। और जो चोरी का माल बरामद हुआ था, वो माल सेठ साहब को वापस मिलेगा। तभी तो इसे न्याय कहेंगे। यह जिम्मेदारी सरकार की और न्यायाधीश की है। अगर चोरी का माल सरकारी खजाने में चला जाए, तो सेठ कहेगा– "साहब, मेरे साथ तो न्याय नहीं हुआ। मेरी तो संपत्ति व्यर्थ में चली गई।"

● भगवान तो पूर्ण न्यायकारी है। आप भी ईश्वर को न्यायकारी मानते हैं न। तो आपकी जो क्षति, उसकी पूर्ति तो मिलनी ही चाहिए। तभी तो न्याय होगा। नहीं तो फिर, अंधेर नगरी चौपट राजा। न्याय तो तभी होता है कि जो समान चुराया गया है, वह वापस मिले। ईश्वर भी न्यायकारी है, जिसका जो भी नुकसान हुआ, ईश्वर उसकी पूर्ति करेगा। कब करेगा, कहाँ करेगा, कैसे करेगा, यह वही जाने, यह हम नहीं जानते।

दर्शनयोग महाविद्यालय
रोजड़वन, गुजरात

☞ पृष्ठ 04 का शेष

पुरुषार्थ–चतुष्टय में ...

"शृण्वन् श्रोत्रं भवति, स्पर्शयन् त्वग्भवति, पश्यन् चक्षुर्भवति, रसयन् रसना भवति, जिघ्रन् घ्राणं भवति, मन्वानो मनो भवति, बोधयन् बुद्धिर्भवति,चेतयंश्चितम्भवत्यहङ्कुर्वाण ाोऽहङ्कारो भवति।"

–(शतपथ ब्राह्मण 14.4.2.17)

अर्थात्–जब सुनना चाहता है तब श्रोत्र, जब स्पर्श करना चाहता है तब त्वचा, देखना चाहता है तब चक्षु, स्वाद की इच्छा में रसना, गन्ध के लिए घ्राण, संकल्प–विकल्प के लिए मन, निश्चय करने के लिए बुद्धि, स्मरण करने के लिए चित्त तथा अहंकार के निमित्त अहंकार रूप अपनी स्वशक्ति से युक्त जीवात्मा मुक्ति में अपने संकल्पमय शरीर के वर्तमान होने से जागृत अवस्था की भाँति आनन्द की अनुभूति होती है। श्रुति के अनुसार जिस प्रकार प्रदीप प्रकाश्य–वस्तुओं में अपने प्रकाश से आविष्ट होकर उन्हें प्रकाशित कर देता है, उसी प्रकार यह आत्मा मुक्तावस्था में ऐश्वर्य प्राप्त कर सांकल्पिक मन, वाक् आदि को प्रकाशित कर देता है। जगत् के उत्पत्ति आदि व्यापार को छोड़कर अन्य ऐश्वर्य मुक्तात्मा को प्राप्त हो जाते हैं, क्योंकि जहाँ जगत् की रचना का शास्त्र में कथन है, वहाँ ब्रह्म का प्रकरण है। मुक्तात्माओं के साथ जगत्–रचना–स्थिति–प्रलय तथा कर्मफल प्रदान करना इत्यादि का सम्बन्ध नहीं है। सत्य–संकल्पवाला होने से मुक्तात्मा स्वयं ही अपना राजा, स्वामी नहीं होता। ब्रह्म के अनन्त ऐश्वर्य तथा मुक्ति में जीवों को सांकल्पिक शरीर के द्वारा प्राप्त होनेवाला ऐश्वर्य में महद् अन्तर है। मुक्तात्माओं का ऐश्वर्य ससीम (सीमा में रहनेवाला) है, जबकि ब्रह्म का अनन्त ऐश्वर्य अखिल ब्रह्माण्ड के अन्दर और बाहर व्यापक होने से असीम है। मोक्ष में मुक्तात्मा बतलायी जाती है, तत्त्वतः जीव और ब्रह्म एक नहीं है, मुक्ति में आनन्दस्वरूप परमात्मा को प्राप्त करके जीवात्मा आनन्दी अवश्य बन जाता है।

मोक्ष या मुक्ति के साधन – भारतीय मनीषियों के अनुसार योग के आठ अङ्गों का अनुष्ठान ही मुक्ति का साधन है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के आठ अङ्ग हैं।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (बहुत अधिक संग्रह न करना अथवा विषय और अभिमान आदि दोषों से रहित होना) – ये पाँच यम हैं। ये यम जाति, देश, काल और निमित्त की सीमा से रहित सार्वभौम होने के कारण महाव्रत हैं।

शौच (आन्तरिक और ब्राह्य पवित्रता), सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान (आत्मासमर्पण) ये पाँच नियम हैं।

निश्चल सुखपूर्वक बैठने का नाम आसन है। प्रयत्न की शिथिलता और अनन्त परमेश्वर में ध्यान लगाने से आसन की सिद्धि होती है।

आसन के सिद्ध होने पर भूख–प्यास, सर्दी–गर्मी आदि द्वन्द्व बाधा नहीं पहुँचाते। आसन में बैठकर श्वास–प्रश्वास की गति को रोकने का नाम प्राणायाम है।

बाह्यवृत्ति=रेचकआभ्यन्तरवृत्ति=पूरक और स्मम्भ वृत्ति=कुम्भक–यह तीन प्रकार का प्राणायाम देश (हृदय या मस्तिषक तक) काल (इतनी देर तक) तथा संख्या से दीर्घ और सूक्ष्म प्रकार से करना निश्चित किया गया है।

प्राणायाम के अभ्यास से विवेकज्ञान पर पड़ा हुआ आवरण (परदा) क्षीण हो जाता है और धारणा में मन की योग्यता स्थिर हो जाती है।

प्राणायाम का अनुष्ठान करते–करते इन्द्रियों के अपने विषय से रहित हो जाने पर चित्त के स्वरूप में तदाकार हो जाने का नाम 'प्रत्याहार' है। प्रत्याहार की सिद्धि हो जाने पर इन्द्रियों की परमवश्यता (इन्द्रिय जय) हो जाती है।

चित्त का किसी एक देश (शरीर में आज्ञाचक्र आदि, सूर्य, चन्द्र आदि बाह्य देश अथवा आत्मा–परमात्मा के विषय) में बाँधना, ठहराना 'धारणा' है। धारणा में चित्त की वृत्ति की तेलधारावत् अखण्ड तल्लीनता का नाम 'ध्यान' है। जब ध्यान में केवल ध्येय का ही अभास (प्रतीत होता है और साधक के अपने स्वरूप का अभाव–सा (चित्त का स्वरूप शून्य–सा) हो जाता है तब वही ध्यान 'समाधि' कहलाता है।

योगदर्शन में वर्णित इन अष्टांगो के परिपालन और सिद्ध होने से जीवात्मा को परमेशवर का साक्षात्कार होता है। परमेश्वर का साक्षात्कार करनेवाला जीव देहपात (मृत्यु प्राप्त) होने तक **जीवनमुक्त** कहलाता है तथा शरीर के शान्त हो जाने पर दूसरा जन्म न धारण कर मुक्ति या मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। मुक्ति, मोक्ष, ब्रह्मपद, परम–पुरुषार्थ, कैवल्य, अपवर्ग, निःश्रेयस आदि मुक्ति के पर्यायवाची शब्द है। बौद्ध दर्शन–सम्मत निर्वाण शब्द भी हिन्दी–भाषा में मुक्तिवाची माना जाता है, यद्यपि बौद्धदर्शन के अनुसार निर्वाण के स्वरूप और आस्तिक दर्शनसम्मत मुक्ति के स्वरूप में अन्तर है।

अध्यक्ष संस्कृत विभाग
स्नातकोत्तर महाविद्यालय
अमेठी

earyasamaj.org

क्या हम मनुष्य हैं?

● मनमोहन कुमार आर्य

मनुष्य कौन है, कौन नहीं? मनुष्य किसे कहते हैं व मनुष्य की परिभाषा क्या है, कि यदि सभी मत–मतान्तरों के व्यक्तियों से इसकी परिभाषा बताने को कहा जाये तो सब अपनी–अपनी अलग परिभाषा करेंगे। वह सब ठीक भी हो सकते हैं परन्तु हम अनुभव करते हैं कि सर्वांगपूर्ण परिभाषा वह नहीं दे सकेंगे। परन्तु जब हम अन्य मत व देशवासियों द्वारा दी जाने वाली सभी सम्भावित मनुष्य की परिभाषाओं पर विचार कर महर्षि दयानन्द की परिभाषा पर विचार करते हैं तो हम पाते हैं कि महर्षि दयानन्द की परिभाषा सबसे भिन्न व सर्वांगपूर्ण परिभाषा है। आईये, देखते हैं कि महर्षि दयानन्द ने मनुष्य की क्या परिभाषा की है? महर्षि दयानन्द स्वमन्तव्यामन्तव्य में मनुष्य की परिभाषा करते हुए कहते हैं कि **"मनुष्य उसी को कहना कि जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख–दु:ख व हानि लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्वसामर्थ्य से धर्मात्माओं की चाहे वह महा अनाथ, निर्बल और गुण रहित क्यों न हों उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ, महाबलवान् और गुणवान् भी हों तथापि उस का नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहाँ तक हो सके वहाँ तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करें। इस काम में चाहे उस को कितना ही दारूण दु:ख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जाएं परन्तु इस मनुष्यतारूपी धर्म से पृथक कभी न हों।"** इसी क्रम में महर्षि दयानन्द ने भर्तृहरि महाराज, महाभारत एवं उपनिषद् आदि के कुछ प्रसिद्ध श्लोक व वाक्य लिखें हैं जो सभी अत्यन्य महत्वपूर्ण, उपयोगी एवं आचरणीय हैं। मनुष्य की यह भाषा परिभाषा महर्षि दयानन्द, वैदिक काल व महाभारत काल के अनेक ऋषियों पर सत्य चरितार्थ होती है। देश की आज़ादी के लिए साम्राज्यवादी अंग्रेजों के विरूद्ध क्रान्ति की गतिविधियों से जुड़े अनेक व सभी क्रान्तिकारियों पर भी इस परिभाषा का प्रभाव देखा जा सकता है। आईये, हम महर्षि दयानन्द की परिभाषा पर विचार करते हैं।

पहले हम महर्षि दयानन्द की परिभाषा की पहली पंक्ति के शब्दों को लेते हैं। महर्षि लिखते हैं कि '**मनुष्य**' उसी को कहना कि जो मननशील होकर स्वात्मवत् दूसरों के सुख–दु:ख व हानि–लाभ को समझे। महर्षि ने देखा था कि हम लोग प्राय: मननशील वा मनस्वी नहीं थे। आज भी धर्म–कर्म के क्षेत्र में यही स्थिति जारी है। हमें अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति वा मनुष्य को मननशील होकर सत्यासत्य का निर्णय करने की क्षमता से युक्त होना चाहिए, यही मननशील होने का मुख्य प्रयोजन है जिससे कोई हमारा शोषण न कर सके या हम किसी का अन्धभक्त न बन सकें। ईश्वर से हमें बुद्धि व मन इसीलिए मिला है कि हम सत्य व असत्य को जानें, सत्य को स्वीकार करें व असत्य का त्याग करें। यदि हमारे अन्दर यह गुण आ जाये तो हमारे व्यक्तित्व व चरित्र का सकारात्मक निर्माण व उन्नति होती है। और इसके विपरीत यदि हम किसी गुरू, धार्मिक या राजनैतिक, के अन्धानुयायी हो जाते हैं। इसके लिए स्वाध्याय भी सहायक है और किसी विषय के विशेषज्ञ से वार्तालाप या उपदेश श्रवण भी उपयोग होता है। **हम समझते हैं कि महाभारत काल से लेकर सन् 1875 तक, देश व विश्व के लोगों का दुर्भाग्य था कि उनके पास सत्यार्थ प्रकाश कोई ग्रन्थ नहीं था।** सन् 1875 में सत्यार्थ प्रकाश अस्तित्व में आया और तब से जिन लोगों ने इसका अध्ययन किया व इसे अपने जीवन का अंग बनाया, उनके जीवन कार्य में एक नवीनता, विशेषता व दूसरों से गुण–कर्म–स्वाभाव में भिन्नता व अन्तर दिखाई दिया। हमारा निजी मत है कि महर्षि दयानन्द ने जो सन्ध्या व यज्ञ की विधि लिखी है व अपने ग्रन्थों में इन यज्ञों पर प्रकाश डाला है, जो लोग इन्हें जानते व समझते हैं व इसको दैनन्दिन व समय–समय पर करते–कराते रहते हैं उनके जीवन अपने निकटस्थों, परिवार व समाज से कुछ अन्तर लिये हुए होते हैं। ऐसे लोगों का वर्तमान जीवन भी अच्छा व्यतीत होता है और इसके बाद के जीवन में भी उनका पुनर्जन्म सवरता व उन्नत होता है।

महर्षि दयानन्द के समय में हमारे भारत के लोग दूसरों के सुख–दु:ख व हानि लाभ को स्व–आत्मवत् नहीं समझते थे। बहुत से लोगों को अपना हित व स्वार्थ व हित से प्रेरित होकर कार्य करते हैं। वह यह विचार नहीं करते कि उनके कार्यों से दूसरों के हितों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है या पड़ सकता है। इसकी उन्हें कोई परवाह नहीं होती। उन लोगों को तो यह भी विदित नहीं होता कि वह गलती पर हैं। वह अपनी अज्ञानता के वशीभूत होकर अपनी हित साधना व स्वार्थ सिद्धि के कार्यो में लगे रहते हैं। ऐसे लोगों से जहाँ एक ओर कुछ व कई लोगों का अहित होता है व उनके स्वार्थो को हानि पहुँचती है वहीं दूसरी ओर इस मनुष्य के स्वभाव मनुष्यता के दर्शन न होकर उनमें पशुता के दर्शन होते हैं। महर्षि दयानन्द ने अपने साहित्य में लिखा है कि जो मनुष्य केवल अपने स्वार्थ में प्रवृत होता है व दूसरों के हितों की अनदेखी करता है, मानो वह पशुओं का भी बड़ा भाई है। पशुओं का अपना एक स्वभाव होता है। कुछ पूर्ण शाकाहारी हैं तो कुछ पूर्ण मांसाहारी। इनमें एक ही जाति के पशुओं के स्वभाव में कुछ भिन्नता वाले पशु होते हैं। पशु तो पशु हैं, इनमें बुद्धि नहीं है। मनुष्य को परमात्मा ने बुद्धि दी है जिससे वह मननशील होता है अर्थात चिन्तन व मनन करता है या कर सकता है। यदि वह ऐसा नहीं करता व एकतरफा अपनी स्वार्थ सिद्धि में ही लगा रहता है तो मननशील न होने के कारण वह पशु श्रेणी में आता है। **स्व–आत्मवत् अन्य प्राणियों के सुख–दु:ख व हानि–लाभ को समझना धर्म है और उसके विपरीत आचरण अधर्म है। दूसरों के प्रति सहानुभूति व संवेदना का व्यवहार करना ही स्वात्मवत् व्यवहार है।** अत: मननशील होकर विवेक बुद्धि से स्व–आत्मवत् स्वभाव व कर्मों का करना ही मनुष्य का स्वात्मवत् एक गुण व धर्म है। हम सभी को इसे जानकर व आचरण में धारण कर अपने जीवन को सफल बनाना है।

मनुष्य होने की एक कसौटी उसका अन्यायकारी बलवान से न डरना और धर्मात्मा निर्बल से भी डरना महर्षि दयानन्द बताते हैं। अन्याय करना अधर्म का प्रतीक है और न्याय धर्म का प्रतीक होता है। न्याय व अन्याय का बोध सत्यार्थ प्रकाशादि ग्रन्थ, न्याय दर्शन व समस्त वैदिक साहित्य को पढ़ने से होता है। वैदिक विद्वानों की शरण में जाने व उनके उपदेशामृत से भी न्याय व अन्याय का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। न्याय व धर्म एक दूसरे के पूरक वा पर्याय हैं व इसी प्रकार अन्याय व अधर्म भी एक दूसरे के पूरक वा पर्याय हैं। अन्यायकारी बलवान से न डरने का मतलब है कि अपने प्राणों की चिन्ता छोड़ अन्यायकारियों से धर्मात्माओं की रक्षा करना, उन्हें अज्ञान, अन्याय व शोषण आदि से मुक्त करना व कराना है। अन्यायकारी प्राय: असत्य का आचरण करते हैं व मनुष्य वह है जो अन्याय का त्याग कर न्याय, पक्षपातरहित होकर आचरण करें। **यही सत्याचरण व धर्म होता है।** आज समाज में सर्वत्र अन्याय, अत्याचार, पक्षपात, स्वार्थ, शोषण व अज्ञानता व्याप्त है। एक बहुत बड़ी चुनौती आज मननशील व विवेकशील मनुष्यों पर है कि वह व्यवस्था में सुधार करें। स्वामी दयानन्द ने अपने समय की व्यवस्था में जो–जो असत्य व बुराईयां देखी थी, उनका निर्भीकता से दिग्दर्शन कराया था और असत्य का खण्डन और सत्य का मण्डन किया था। आज भी आवश्यकता है कि हम असत्य से समझौता करने व मौन रहने की अपेक्षा उसका प्रकाश व प्रचार करें और मन, वाणी, वचन व कर्म, लेखनी व उपदेश आदि से जो भी बन बड़े उसे निर्भीकता से करना चाहिये। **ऐसा करना ही अज्ञान, अन्याय, अभाव, स्वार्थ व शोषण से मुक्त समाज का आधार हो सकता है।** महर्षि दयानन्द ने धर्मात्माओं से डरने की जो बात कही है उसके पीछे यह कारण अनुभव होता है कि धर्मात्माओं में ईश्वर प्रदत्त ज्ञान व बल छुपा होता है। यदि हम डरेंगे तो उनके निकट होकर उनकी संगति से लाभ उठा सकते हैं और नहीं डरेंगे तो उनसे अन्याय कर बैठेंगे जिससे वर्तमान व भविष्य में हमारी ही हानि है अर्थात् धर्मात्मा को प्राप्त होने वाले व अपवर्ग से हम वंचित रहेंगे। इसके साथ अधार्मिक अर्थात् अधर्मी होने से हमें अवनति, आध्यात्मिक व समाजिक, का सामना करना होगा।

मनुष्य की परिभाषा में महर्षि दयानन्द ने यह भी जोड़ा है कि "इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्वसामर्थ्य से धर्मात्माओं की चाहे वह महा अनाथ, निर्बल और गुण रहित क्यों न हों उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ, महाबलवान् और गुणवान् भी हों तथापि उस का नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहाँ तक हो सके वहाँ तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे।" अनाथ, निर्बल व गुण रहित धर्मात्माओं की रक्षा, उन्नति व प्रियाचरण से हमें धर्मात्माओं का आशीर्वाद व शुभकानायें प्राप्त होती हैं जिससे हमारी आयु, विद्या, धन व बल में वृद्धि होती है। धर्मात्माओं की रक्षा व उन्नति होने से इनकी संख्या बढ़ेगी व अधर्मियों की संख्या में कमी आयेगी। यदि हम एक भी धर्मात्मा बनाने में सफल होते हैं तो इसका अर्थ है कि हमने एक अधर्मी को कम किया है। अब यह हो सकता है कि यह धर्मात्मा न जाने कितने धर्मात्मा बना दें। गुरु विरजानन्द व स्वामी दयानन्द का उदाहरण हमारे सामने है। गुरु विरजानन्द ने एक स्वामी दयानन्द को बनाया और स्वामी दयानन्द गुरु के सन्देश को न केवल देश में ही अपितु सारे संसार में प्रचारित व प्रसारित कर दिया। महर्षि दयानन्द आगे कहते हैं कि अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ, महाबलवान् और गुणवान् भी हों तथापि उस का नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करें। इसका कारण है कि अधर्मी मनुष्य समाज में नही होने चाहिये और यदि वह हों तो अलग–थलग पड़ जायें और विवश होकर अपना आचरण बदल लें। यदि उनके प्रति अच्छा व्यवहार करेंगे तो समाज में असमानता व असन्तुलन उत्पन्न होगा जो कि ईश्वर और वेद की शिक्षाओं के विरूद्ध है। महर्षि मनु ने इसी लिए कहा है कि जो मनुष्य वेदाध्ययन व सन्ध्योपासना, यज्ञ आदि नहीं करता वह जीवित ही शूद्रत्व को प्राप्त हो जाता है। वह द्विजों के अधिकारों से वंचित हो जाता है अथवा उसको वंचित कर देना चाहिये। ऐसा तभी सम्भव है जब कि हमारा राजा वेदों का विद्वान व उनका आचरण करने प्रति कटिबद्ध हो। प्रयास करने से कार्य की सफलता सहित सभी कुछ सम्भव है। हमारा राजा वेदों का विद्वान होगा तभी

शेष पृष्ठ 08 पर ☞

thearyasamaj.org

कुछ उपनिषदों से

(बृहदारण्यक उपनिषद्)

● डॉ. सुशील वर्मा

पिछले अंक में याज्ञवल्क्य एवं गार्गी के सम्वाद के माध्यम से देवताओं के विषय में ज्ञान अर्जित किया। यह तो एक स्थापित है कि हमारी संस्कृतिक में नारी जाति के सम्मान, उनकी विद्वत्ता, श्रेष्ठता एवं शालीनता से सुशोभित रही है। इस अंक में बृहदारण्यक उपनिषद् के ही द्वितीय अध्याय के चौथे ब्राह्मण में याज्ञवल्क्य एवं उनकी पत्नी मैत्रेयी का सम्वाद प्रस्तुत किया गया है जो अपने आप में बहुत शिक्षाप्रद एवं हितकारी है। ऋषि ने गृहस्थाश्रम के पश्चात अपनी इच्छा अपनी पत्नी (मित्रा की पुत्री) मैत्रेयी से प्रकट की। उन्होंने कहा कि मैत्रेयी वह गृहस्थ छोड़ने से पहले चाहता है कि कात्यायनी (याज्ञवल्क्य की दूसरी पत्नी) से अपनी सम्पत्ति आदि का निपटारा करवा दूँ ताकि बाद में कोई विवाद न हो। मैत्रेयी बहुत ही बुद्धिमती, सूझवाली एवं विदुषी थी तो उसने फौरन कहा कि यदि वह सारी पृथिवी वित्त से पूर्ण होकर मेरी हो जाए तो क्या मैं अमर हो जाऊँगी? "कथं तेन अमृता स्याम"

प्रत्युत्तर में याज्ञवल्क्य कहते हैं "नहीं, उस अवस्था में जैसे कोई सम्पन्न, साधन युक्त व्यक्ति चैन से जीवन निर्वाह करता है उसी प्रकार ही तुम्हारा जीवन होगा। धन धान्य से अमरता पाने की आशा नहीं की जा सकती।

"अमृतत्वस्य तु न आशा अस्ति वित्तेन"

ठीक इसी प्रकार का उपदेश कठोपनिषद् में भी वर्णित है "न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः" मनुष्य धन से तृप्त नहीं हो सकता। ऐसा उत्तर पा कर मैत्रेयी फिर कहती है कि जिससे मैं अमर न हो सकूँ, उसे लेकर मैं क्या करूँगी।

"येन अहं न अमृतास्याम किमहं तेन कुर्याम्"

यही है भौतिकवाद से छुटकारा, अन्यथा तो धन की लालसा किसे नहीं होती। आज सभी प्राणी इसी धन एवं भौतिक सुखों के पीछे भाग रहे हैं। एक अनथक प्रयास जारी है इसे प्राप्त करने में, चाहे वह प्रयास कितना भी अनैतिक क्यों न हो।

परन्तु मैत्रेयी तो याज्ञवल्क्य से अमर होने का उपदेश चाहती है। यह उपदेश ही वास्तव में हमारे जीवन का रहस्य है, एक यथार्थ वास्तविकता है, जिससे हम अमरतत्व को प्राप्त कर सकते हैं। यह सन्देश है भारतीय संस्कृति के स्वरूप का, जिसने भौतिकवाद को नहीं अपितु अध्यात्म को श्रेष्ठ माना।

याज्ञवल्क्य कहते हैं, "अरे, पति की कामना के लिए पति प्रिय नहीं होता, अपने आत्मा की कामना के लिए पति प्रिय होता है। पत्नी की कामना के लिए पत्नी प्रिय नहीं होती है। पुत्रों की कामना के लिए पुत्र प्रिय नहीं होते, वित्त की कामना के लिए वित्त प्रिय नहीं होता, ब्रह्म शक्ति की कामना के लिए ब्रह्म प्रिय नहीं होता, क्षात्र शक्ति की कामना के लिए क्षत्र प्रिय नहीं होता, लोकों की कामना के लिए लोक प्रिय नहीं होते, देवों की कामना के लिए देव प्रिय नहीं होते, भूतों की कामना के लिए भूत प्रिय नहीं होते, अपितु इन सब के प्रति अपने आत्मा की कामना के लिए यह सब कुछ प्रिय होता है। जिस आत्मा के लिए यह सब प्रिय होता है, अरे वह आत्मा ही तो द्रष्टव्य है, श्रोतव्य है, मन्तव्य है, निदिध्यासितव्य है। उसी को देख, उसी को सुन उसी को जान, उसी का ध्यान कर। आत्मा के ही देखने से, सुनने से, समझने से, जानने से, सब ग्रन्थियाँ अर्थात् गाँठे खुल जाती हैं।

"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्य मन्तव्यः निदिध्यासितव्यः"।

अतः यह आत्मा ही है जो देखने, सुनने, समझने व ध्यान करने योग्य है। इससे आगे वे कहते हैं कि अपने भीतर की आत्मा के अतिरिक्त कुछ नहीं है। जो ब्राह्म शक्ति को आत्मा से भिन्न जानता है, उसे ब्राह्म शक्ति त्याग देती है, इसी प्रकार क्षात्र शक्ति, लोक, देव, भूत आदि सभी आत्मा के कारण ही है। आत्मा ही ब्रह्म शक्ति है, यही क्षत्र शक्ति है, यही लोक है, यही देव है, यही भूत है। यह आत्मा ही सब कुछ है। इसलिए इसी की कामना के लिए सब प्रिय होता है, इसलिए आत्मा को ही जानो। साधारण जीवन में भी हम यदि किसी के लिए कुछ अच्छा व प्रिय कार्य करें तो हमारे मुख से यही शब्द निकलते हैं कि मेरी तो आत्मा प्रसन्न हो गई है और जो पाने वाला होता है वह भी कहता है कि मेरी तो आत्मा प्रसन्न हो गई, तृप्त हो गई। कई दिनों से भूखे को खाना खिलाकर देख लेना, किसी असहाय की सहायता करके देख लेना, यही उत्तर मिलेगा।

इसी आत्मा के विषय में याज्ञवल्क्य कहते हैं कि यदि संसार को पकड़ना हो तो इन्द्रियों को पकड़ लो और उससे बढ़कर आत्मा को पकड़ लो। इसके लिए वे शंख, दुन्दुभि एवं वीणा की उदाहरण देते हैं कि इनके द्वारा निकालने वाली आवाज नहीं अपितु उसे बजाने वाली आत्मा को पकड़ लो। जिस प्रकार गीली लकड़ियाँ जलाई जाएँ तो आग से अलग धुआँ बाहर निकल पड़ता है। अरे मैत्रेयी इसी प्रकार इस महान भूत, महान शक्ति आत्मा का यह निःश्वास है, बाहर की ओर लिया गया साँस है।

जैसे सब जल समुद्र को पहुँचते हैं, सब स्पर्श त्वचा को, सब गन्ध नासिका, को, सब रस जिह्वा को, सब रूप चक्षु को, सब शब्द श्रोत्र को, सब संकल्प मन को, सब विद्या हृदय को, सब कर्म हस्त को सब आनन्द उपस्थ को, सब विसर्ग पायु को, सब गति पावों को। वैसे ही सब वेद, इतिहास आदि वाणी को पहुँचते हैं और वाणी आत्मा द्वारा विकसित होती है। इसलिए आत्मा ही से सृष्टि के सम्पूर्ण प्रवाह का प्रसार है। आत्मा से ही सब कुछ जाना पहचाना जाता है। परन्तु जब आत्मा को भूतों से अलग कर दिया जाए तब उसकी संज्ञा नहीं रहती, उस समय वह अपने निर्वचनीय रूप में जा पहुँचता है, नष्ट नहीं होता।

यथार्थ में यदि चिन्तन करें तो वास्तविकता यही प्रकट होती है। अन्तःकरण क्या है, मन, बुद्धि चित्त एवं अहंकार। ये चारों ही जड़ हैं, यदि जड़ हैं तो चिन्तन कैसे करें? निर्णय कैसे लें? मनन कैसे करें? चेतनता कैसे जागृत होती है? और अहं कैसे स्थापित होता है? केवल मात्र आत्मा के द्वारा ही यह सब सम्भव है। यदि आत्मा है तो इन चारों में चेतनता आती है। सक्रियता का संचालन होता है। यदि आत्मा निर्बल हो जाए, शरीर का साथ छोड़ दें तो सभी इन्द्रियाँ सभी सामर्थ्य, सभी चेतनाएँ समाप्त हो जाती हैं। वह भूत मृत संज्ञक हो जाता है। वह आत्मा अपने निर्वचनीय रूप में पहुँच जाती है, परन्तु वह नष्ट नहीं होती। आत्मा का शरीर के साथ सम्बन्ध ही जन्म है और आत्मा का शरीर विच्छेद मृत्यु। इसी को अनुमोदन करते हुए कठोपनिषद् में कहा गया है।

"न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽ यं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।। कठ 2/18

यही गीता में भी कहा गया है

न जायते म्रियते वा कदाचिन्न नायं भूत्वा भविता वा ना भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।। कठ 2/20

सारांश यही कि आत्मा ही से सृष्टि के सम्पूर्ण प्रवाह का प्रसार है। आत्मा ही अमृत है, आत्मा ही बृह्म है, आत्मा है सब कुछ है और इसी को ब्रह्म विद्या अथवा मुध–विद्या के नाम से पुकारा जाता है। जिसका विस्तृत वर्णन इसी उपनिषद् के इसी अध्याय के पाँचवे ब्राह्मण में किया गया है। आगे के अंक में 'रव', 'द' हृदय तथा सत्य (भूः भुवः स्वः) के अर्थ का चिन्तन करेंगे।

गली मास्टर मूल चंद वर्मा
फाजिलका–152123 (पंजाब)

गुरुकुल आश्रम आमसेना में दो नवयुवकों ने किया आजीवन समाज सेवा का संकल्प

पूज्य स्वामी धर्मानन्द जी सरस्वती ने हरियाणा प्रान्त से आकर ओड़िशा प्रान्त के एक अकालग्रस्त कालाहाण्डी (वर्तमान नुआपड़ा) जिले में गुरुकुल आश्रम आमसेना नामक बृहद् संस्था की स्थापना की। आज इस गुरुकुल से अन्य 18 संस्थाएं संचालित हैं।

स्वामी जी ने अपने प्रभाव से अनेक नवयुवकों को नैष्ठिक दीक्षा देकर देश, धर्म की रक्षा का संकल्प करवाया है तथा सभी नवयुवक स्वामी जी के निर्देशानुसार कार्य कर रहे हैं। इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए गत 10 अगस्त को ब्र. राकेश कुमार आर्य तथा ब्र. प्रवीण आर्य (पुनीराम) ने श्रावण पूर्णिमा (रक्षाबन्धन) के दिन आजीवन नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की दीक्षा लेकर अपना सर्वस्व देश को सौंप दिया। इस गरिमामय कार्यक्रम में स्वामी धर्मानन्द सरस्वती, स्वामी व्रतानन्द सरस्वती, डॉ. कुञ्जदेव मनीषी एवं बहुत से विद्वान् एवं अतिथिगण उपस्थित थे। अन्त में स्वामी धर्मानन्द जी ने दोनों ब्रह्मचारियों के इस साहसिक कार्य की भूरि–भूरि प्रशंसा की।

thearyasamaj.org

महर्षि की दृष्टि में नामों की सार्थकता

● हीरालाल आर्य

महर्षि दयानन्द द्वारा रचित विभिन्न ग्रन्थों तथा विभिन्न विद्वानों द्वारा लिखित महर्षि के जीवन चरित्र को पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि महर्षि नामों की सार्थकता को कितना अधिक महत्व देते थे? वे ऑग्ल भाषा, उर्दू–फारसी के शब्दों के स्थान में संस्कृतनिष्ठ हिन्दी (आर्य भाषा) को विशेष महत्व देते थे।

हमारे देश का प्राचीनतम नाम आर्यावर्त था और यहाँ के निवासी आर्य कहलाते थे। विदेशियों के प्रभाव से इस देश का नाम हिन्दुस्तान पड़ा और यहाँ के निवासी हिन्दू कहलाए। आज भी हमारे देश का नाम अंग्रेजी में इण्डिया, उर्दू में हिन्दुस्तान तथा हिन्दी में भारतवर्ष प्रचलित है। संविधान में India that is Bharat के नाम से अंकित है।

1) पूना प्रवचन में महर्षि ने कहा है– ''हम नाम भ्रष्ट हुए तो सही किन्तु गुण भ्रष्ट क्यों होते है? यहाँ उनका स्पष्ट संकेत देश का नाम हिन्दुस्तान के बारे में है।

2) सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास में महर्षि दयानन्द सरस्वती लिखते हैं कि हिन्दू शब्द संस्कृत भाषा का नहीं है। फारसी भाषा का वास्तविक अर्थ हिन्दुस्तान में रहने वालों का है और काला, लुटेरा गुलाम आदि यह सांकेतिकार्थ है। समीक्षा– वह क्या? जब संस्कृत भाषा का नहीं है तो इसका वास्तविक अर्थ कही नहीं हो सकता; वास्तविक अर्थ इस देश वालों का नाम आर्य और इस देश का नाम आर्यावर्त है। इस सत्यार्थ को छोड़ असत्यार्थ की कल्पना करनी मुझको तो अविद्या और हठ की लीला दिखाई पड़ती है।

''जब अरबी की 'लुगात' नामक पुस्तक में लिखा है–''लुटेरे आदि नाम हिन्दू के हैं तो इस भाषा में वास्तविक नाम क्यों नहीं? केवल सांकेतिकार्थ क्यों है? अर्थात् जो कोई आर्य होकर अपना हिन्दू नाम होने का आग्रह करे, उन्हीं का नाम काला, लुटेरा, गुलाम आदि का रहे, आर्यो का नहीं'' पत्र विज्ञापन से

उपरोक्त विवेचन से यह स्पस्ट है कि अरबी, फारसी के शब्द कोषों में हिन्दू के अर्थ काला, लुटेरा, गुलाम, चोर, बदमाश आदि अंकित हैं। अतः महर्षि की दृष्टि में हिन्दू शब्द का प्रयोग करना उचित नहीं है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती राष्ट्रभाषा हिन्दी के पूर्ण समर्थक थे। वे हिन्दी को आर्य भाषा के रूप में पुकारते थे। उन्होंने वेदों का भाष्य संस्कृत–हिन्दी में किया। ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थ हिन्दी में लिखे। प्रारंभ में स्वामी जी महाराज सरल संस्कृत में अपना व्याख्यान देते थे किन्तु केशव चन्द्र सेन के परामर्शानुसार उन्होंने हिन्दी में प्रवचन देना प्रारंभ कर दिया। वे हिन्दी (आर्य भाषा) का प्रचार–प्रसार कर जन–जन की भाषा बनाना चाहते थे और राष्ट्र भाषा हिन्दी की नींव मजबूत बनाना ही उनका ध्येय था।

यद्यपि स्वामी जी की मातृभाषा गुजराती थी किन्तु हिन्दी (आर्यभाषा) को सर्वोच्च महत्त्व देते थे। मुम्बई के प्रथम वार्षिकोत्सव (आर्यसमाज) के पश्चात सन् 1882 में स्वामीजी महाराज सज्जन सिंह जी के निमन्त्रण पर उदयपुर पधारे। सज्जन निवास गुलाबबाग में नवलखा महल में सात माह तक ठहरे तथा महाराज को मनुस्मृति, योग शास्त्र आदि का अध्ययन कराया

उदयपुर में ही एक डिंगल (राजस्थानी) के कवि फतहकरण स्वामी जी के संपर्क में आए स्वामी जी ने उन्हें समझाया की फतहकरण नाम उपयुक्त नहीं है। इसकी जगह विजयकरण का नाम उचित लगता है। कवि फतहकरण ने स्वामी जी का परामर्श स्वीकार कर अपना नाम विजयकरण रख लिया। आगे विजयकरण से ही वे जाने–जाते रहे।

उदयपरु से महर्षि दयानन्द सरस्वती चित्तौड़ होते हुए शाहपुरा रियासत में पधारे। तत्कालीनराजाधिराज सर नाहर सिंहजी के सी आई वार्ड में आदर के साथ रेतिया बाग में नव निर्मित कुटिया में ठहरने की व्यवस्था की। शाहपुरा में स्वामी जी 8 मार्च 1883 से 26 मई 1883 तक (ढाई माह से ऊपर) विराजे और राजाधिराज को मनुस्मृति, योगशास्त्र तथा वैशेषिक दर्शन के कुछ भागों का अध्ययन कराया। राजाधिराज राजकर्म के बाद प्रतिदिन रेतियो बाग में स्वामीजी के पास पढने के लिए पधारते थे। यहाँ तीन घंटे ठहरते थे। एक दिन स्वामी ने चर्चा में बताया कि राजन् नाम के पीछे सिंह शब्द लगाना उपयुक्त नहीं। सिंह शब्द हिंसक वृत्ति का सूचक है। अतः नाम के पीछे सिंह के बजाय देव शब्द का प्रयोग करना उचित रहेगा। राजाधिराज ने स्वामी जी का परामर्श स्वीकार कर आगे अपने पौत्र–प्रपौत्र के नाम के पीछे देव शब्दों का प्रयोग किया। प्रमाण के रूप में सुदर्शन देव, शुभजन्य देव और इन्द्रजीत देव जो अभी मौजूद हैं।

शाहपुरा से स्वामी जी महाराज जोधपुर नरेश जसवन्त सिंह जी के निमंत्रण पर अजमेर होते हुए जोधपुर पहुँचे। यहाँ वे चार माह ठहरे और वैदिक धर्म का प्रचार–प्रसार किया। यहाँ वे नरेश जसवन्त सिंह जी को वैश्या नन्हीं जान के साथ महल में देख। स्वामीजी ने नरेश को समझाया 'राजन आप शार्दूल है क्या कुतिया के पीछे पड़े है? नरेश शर्म से पानी–पानी हो गए नन्हीं जान बहुत नाराज हुई, खैर स्वामी जी के रसोइय जगन्नाथ को प्रलोभन देकर रसोइए के द्वारा दूध में विष मिला दिया। स्वामी जी विश्वास के आधार पर दूध पी गए। वे ऐसे बीमार हुए कि फिर उठ नहीं सके। 30 अक्तूबर 1883 को अजमेर मिठाई की कोठी में उनका प्राणान्त हो गया।

अधिकांश जीवन चरित्रों में स्वामीजी के रसोइए का नाम जगन्नाथ ही अंकित है। श्री भवानी जी भारतीय ने स्वामीजी का जीवन चरित्र 'नवजागरण के पुरोधा' नाम से लिखा है उसमें स्वामीजी के रसोइए का मूल नाम घूला या धौड़ मिश्र अंकित किया है। इतिहास की प्रामाणिक दृष्टि से यह नाम सही हो सकता है किन्तु स्वामीजी नाम की उपयुक्तता को दृष्टि में रखते हुए अपने स्वभाव के अनुसार अपने रसोइए को जगन्नाथ नाम से ही पुकारते थे जो उनकी दृष्टि में उचित था। अतः रसोइए के इस नाम को विश्वसनीय कहा जा सकता है ऐसा लेखक का विचार है

सूर्य निवास' नई आबादी कुष्ठ गेट बाहर
शाहपुरा जिला–भीलवाड़ा (राज.)

☞ पृष्ठ 06 का शेष

क्या हम मनुष्य...

सभी को पूर्ण सुख होने की सम्भावना होती है। ऐसा होने पर ही वेदानुसार आध्यात्मिक क्रान्ति सम्भव है। इसके बिना देश व समाज सफलता के शिखर पर नहीं पहुँच सकते। जब देश भर में सभी वेदाज्ञा का पालन करने वाले धार्मिक होंगे तभी सर्वत्र सुख व शान्ति हिलोंरे लेंगी। हम समझते हैं कि अधर्मी चक्रवर्ती राजा व अधर्मी महाबलवान व गुणवान लोगों को प्रजा के द्वारा विरोध, अवनति और अप्रियाचरण से ही बदला जा सकता है या उन्हें सत्य के आचरण में प्रवृत्त किया जा सकता है। अपने समय की परिस्थितियों व इतिहास की घटनाओं का अध्ययन व मूल्यांकन कर ही महर्षि दयानन्द ने यह पंक्तियाँ लिखी है, वह न कर सके तो कम से कम सभी मनुष्यों से जहाँ तक हो सके वहाँ तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा करनी चाहिये। हम समझते हैं कि संसार के सभी देशों में न्याय व्यवस्था स्थापित है जिसका एक मात्र उद्देश्य ही अन्यायकारियों को अन्याय न करने देना, उनके बल की हानि करना और न्यायकारियों के बल व सामर्थ्य की उन्नति करना ही है। महर्षि दयानन्द के समय में विदेशी सरकार थी जो यहाँ के मनुष्यों के प्रति अन्याय का व्यवहार करती थी। **देशवासियों को अंग्रेजों के विरूद्ध आन्दोलन करने के लिए प्रेरणा स्वरूप ही यह वाक्य लिखे गये थे।** हम समझते हैं कि आर्य समाज के अनुयायियों पर इन पंक्तियों का प्रभाव पड़ा भी था। इसी कारण आजादी के आन्दोलन में आर्य समाज के अनुयायियों की संख्या 80 प्रतिशत व इससे भी अधिक स्वीकार की गई है। इन विचारों का ही परिणाम है कि महर्षि दयानन्द के दो साक्षात शिष्यों **महादेव गोविन्द रानाडे और श्यामजी कृष्ण वर्मा** व उनके शिष्यों गोपाल कृष्ण गोखले, महात्मा गांधी तथा वीर विनायक सावरकर आदि द्वारा अंहिसात्मक एवं क्रांतिकारी आन्दोलन की नींव पड़ी जिसे अनेक देशवासियों ने सिंचित किया, पल्लवित व पोषित किया और देश को स्वतन्त्रता की प्राप्ति हुई। अतः सभी को अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति करने का सदैव प्रयत्न करना चाहिये जिससे देश की आज़ादी सुरक्षित रहे।

महर्षि दयानन्द मनुष्य के गुणों व कर्तव्यों का उल्लेख कर अन्त में कहते हैं कि इस काम, अन्याय को समाप्त करने, में चाहे किसी मनुष्य को कितना ही दारूण दुःख प्राप्त हो, चाहे उसके प्राण भी भले ही चले जावें, परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक कभी न होवे। हम आज के समाज में मनुष्यों में महर्षि दयानन्द द्वारा परिभाषित मनुष्यों के गुणों व विशेषताओं का प्रायः अभाव ही देख रहे हैं। इसी कारण देश में नाना प्रकार की समस्यायें हैं। हम समझते हैं कि यदि हम महर्षि दयानन्द की परिभाषा के अनुरूप मनुष्य बनायें तो देश की सारी समस्यायें हल हो सकती हैं और यह विश्व के लिए एक अच्छा उदाहरण हो सकता है। हम पाठकों से अनुरोध करते हैं कि वह सत्यार्थ प्रकाश के अध्ययन के साथ मनुष्य की पूरी परिभाषा को पढ़े। महर्षि दयानन्द ने मनुष्य की उपर्युक्त परिभाषा के अतिरिक्त शास्त्रों के जिन श्लोकों व संस्कृत के वाक्यों को लिखा है, उन पर भी मनन करना चाहिये और उसे क्रियान्वित करने में अपना सहयोग देना चाहिये।

पता : 196, चुक्खूवाला–2
देहरादून–248001, फोन : 09412985121

thearyasamaj.org

वस्तु का प्रयोग ही उसका आदर है

● नीला सूद

बुद्धिमान कहते हैं हर एक वस्तु का प्रयोग होना चाहिये। वस्तु का प्रयोग ही उसका आदर है। इस के विपरीत जब हम सब साधन जुटाकर वस्तु को बनाते है पर उसका प्रयोग नहीं करते या फिर आंशिक रूप से करते हैं तो वस्तु का अनादर है। यह बात भारत जैसे देश के लिये और भी खरी उतरती है जहां जनसंख्या के अनुपात में साधनों की कमी है। वैसे तो शुरू से ही मनुष्य की मानसिकता यही रही है कि हर एक वस्तु का जहां तक सम्भव है, प्रयोग किया जाये। आप तरह तरह के मसाले, ओषधियां, अनाज देखतें हैं वे इसी मानसिकता को दर्शाते है। जहां गेंहू के अन्दर के भाग का प्रयोग आटा और मैदा बनाने मे लिया जाता है वहीं छिलके का प्रयोग उर्जा बनाने के लिये किया जा रहा है। यही नहीं हर एक स्थान पर, जरूरत के अनुरूप, अलग अलग तरह से प्रयोग किया जाता है। एक चीज जो खुलकर सामने आती है वह यह है कि व्यक्ति किसी चीज को भी फेंकने से पहले प्रयोग में लाने की पूरी कोशिश करता है। इस बारे में उसने पशुओं को भी नहीं छोड़ा। पहले दूध पीता है और जब मर जाते है तो उनकी खाल का प्रयोग जूते बनाने के लिये किया जाता है। यही नहीं अव यह सोच भी आ गई है कि मानव के शरीर को भी मृत्यु के उपरान्त जलाने या दफनाने के स्थान पर प्रयोग किया जाये। मानव के उपयोगी अंग जैसे आखें आदि दूसरों की आंखों में रोशनी दे रहे हैं। बहुत से व्यक्ति अपने शरीर को मृत्यु के उपरान्त अन्वेषण के लिये दान कर रहे हैं। हर वस्तु के प्रयोग की कोशिश करना एक अच्छी सोच है।

जहां मानव एक ओर तो इतना समझदार है वहीं उसकी दूसरी तसवीर भी उभर कर आ रही है। हर शहर में धर्म, जाति सम्प्रदाय के नाम पर बड़े बड़े भवन खड़े किये गये हैं या बहुत सारी भूमि खरीद कर रख ली गई है। बहुत सारे इन भवनों का या तो आंशिक प्रयोग है या फिर बिल्कुल कोई प्रयोग नहीं। ताले लगे रहते हैं या फिर हफ्ते या महीने बाद एक घंटें के लिये खोल दिये जाते हैं। आप ही के शहर में जहां जमीन की कीमत एक लाख रूपये प्रति गज से भी उपर है, ऐसे भी भवन हैं जिनकी कीमत 50–100 करोड़ है और पूरे साल में मुश्किल से दो तीन दिन के लिये किसी सालाना उत्सव पर उनका प्रयोग होता है। प्रयोग तो कुछ नहीं पर हजारों रूपयें रंग–रोगन, रख–रखाव और सफेदी पर खर्च कर दिये जाते है। सच यह है कि यह देख कर दिल में खुश रहते है कि करोड़ों की जायदाद पड़ी हुई है। इसका एक और पहलू भी देखिये। यह सभी भवन अच्छे दानी लोगों के दान द्वारा बनते हैं।

उन महान आत्माओं ने भवन के लिये दान इसलिये तो नहीं दिया होगा कि इस का प्रयोग न हो। यह दान में आये धन का दुरूपयोग है व उनके साथ धोखा है। खास कर यह देखते हुये कि हमारे देश की बढ़ती हुई जनसंख्या में बच्चों की पढ़ाई के लिये भवन नहीं हैं। रोगियों के लिये अस्पताल नहीं हैं और जो रोगियों के साथ उनके ईलाज के लिये आते है उनको खुले में सोना पड़ना है। घर से सताये बूढ़ों के लिये वृद्ध आश्रम नहीं है।

केवल भवन की ही बात नहीं। बहुत कुछ और देखने को मिलता है। दानियों ने बर्तनों के सैट तो संस्थाओं को दान में दे दिये पर पर वे सालों से वैसे पड़े हैं, क्योंकि अधिकारी वर्ग में सेवा की भावना ही नहीं है। गददे तो दान में लेते हुये बहुत खुश होते है बढ चढ कर नाम की भी घोषणा करते हैं पर प्रयोग तो तब हो जब इन पर बैठने वाला कोई हो। कमरे तो बनवा लिये हैं पर बन्द रहते हैं इसके बावजूद कोशिश यह रहती है एक और कमरे के लिये मरने से पहले कोई दान दे जायें।

एक सोच की आवश्यकता है। यदि हम यब साधन बना कर भी इनका प्रयोग नहीं करते हैं या होने नहीं देते तो यह उन वस्तुओं का अनादर है व जिन दानी महानुभावों ने इसके लिये दान दिया था उनके साथ बहुत बड़ा धोखा है और आप प्रबन्धक के तौर पर पाप के भागी हैं।

इसका समाधान है। अभी हाल ही में राजकोट गुजरात में मैं पैदल ही एक म्यूजियम को ढूंढ़ रहा था तभी गलती से मैं किसी दूसरे भवन में चला गया। पूछा कि यह क्या है? तो वहां बैठे हुए सज्जन ने बताया कि यह भवन किसी धार्मिक समाज के लोगों ने बनाया था पर जब समाज में आने वालों की संख्या बहुत घट गई तो trust के सदस्यों ने इसके अच्छे प्रयोग के लिये सोचना शुरू कर दिया। पास ही एक बड़ा अस्पताल है जहां दूर दूर से लोग अपना या परिवारजनों का ईलाज करवाने आते हैं। रोगी को तो जगह मिल जाती है पर जो व्यक्ति उसके साथ होते थे उन्हें बहुत मुश्किल होती थी। होटलों में रहना सब के बस का नहीं। ऐसे में हमने निर्णय लिया कि जो रोगियों के साथ आते हैं उनके रहने के लिये 100 कमरे व भोजन शाला **बना दी जाये। आज** हम एक कमरा 100 रूपया प्रति दिन के हिसाब से देते हैं (गरीबों से वह भी नही लिया जाता) और 5 रू में खाना देते है। मन बहुत प्रसन्न हुआ। यह है किसी वस्तु का ठीक प्रयोग। यही नहीं प्रबन्धक ने बताया कि अब दान पहले से कहीं अधिक आता है।

मानव जाति का उपकार करना सब समाजों का उदेश्य है। पर यह बात अमल में तभी आ सकती है, अगर हम इस पर सोचें। हाँ इन कार्यों के लिये पैसा ही नहीं चाहिये बल्कि उदार हृदय होना चाहिये, वसुधैव कुटुम्बकम – सारा संसार एक परिवार है, की भावना होनी चाहिये और सब से बड़ी बात सेवा की भावना होनी चाहिये, दया सेवा, करूणा और संवेदनशीलता जैसे गुण अधिकारी वर्ग में होना आवश्यक हैं। पर मुश्किल यह है कि जिन्हें हमने उपर बिठाया होता है उनका नाम ही होता है उन में न यह गुण होते हैं न समय। उन्हें अपने कामों सें ही फुर्सत नहीं होती। वैसे तो ऐसे अधिकारियों को स्वयं ही पद छोड़ देने चाहियें और ऐसे व्यक्तियों को काम करने दें, जो मननशील हैं और समय दे सकते हैं।

231, सैक्टर – 45–I
चण्डीगढ़ – 160047
0172 – 2662870

झज्जर (हरियाणा) में स्वामी शक्ति वेश का जन्मदिवस

वैदिक सत्संग मण्डल व यज्ञ समिति झज्जर के तत्वावधान में आर्य जगत के महान संन्यासी स्वामी शक्तिवेश जी महाराज का जन्म दिवस बड़ी धूमधाम से गांव कलोई से मनाया गया। जिसमें यज्ञ ब्रह्मत सूबेदार भरतसिंह, यजमान विवेक कुमार रहे। इस अवसर पर बृहद यज्ञ का आयोजन किया गया। कार्यक्रम कि अध्यक्षता आचार्य राजहंस मैत्रेय, आत्मशुद्धि आश्रम, बहादुरगढ़ थे और मुख्य वक्ता योगाचार्य रमेश आर्य थे। आचार्य मैत्रेय ने अपने अध्यक्षीय भाषण मे कहा कि जो व्यक्ति कथनी और करनी में एकरूपता रखता है और कठिनाईयों से घबराता नहीं है वही महान बनता है। स्वामी शक्तिवेश जी एक झुझारू कर्मठ व निडर व्यक्तित्व के धनी थे। उन्होंने थोड़े समय में भी आर्य समाज का बहुत काम किया है। जिन्हें हमेशा याद किया जाएगा। मण्डल अध्यक्ष पं. रमेश चन्द्र कौशिक ने कहा हमें कन्या भ्रूण हत्या को अभिशाप मानकर इसका विरोध करना चाहिए और सृष्टि के विस्तार में रुकावट नहीं डालनी चाहिए।

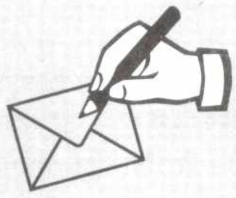

पत्र/कविता

विद्वान कौन है?

आज उसे विद्वान मानते हैं जो एम.ए. पी.एच.डी. है या अनेक प्रकार के अलंकारों से सुसज्जित (युक्त) है। जैसे वेदालंकार + विद्यालंकार, सिद्धांत आचार्य इत्यादि। ये उपाधियाँ किसी ने कैसे प्राप्त की हैं? कुछ महानुभावों ने अपनी प्रतिभा (बुद्धि) के बल पर, परिश्रम से, परीक्षा पास करके ली हैं, कुछ ने अपने वरिष्ठ गुरु जनों, अधिकारियों की तन,मन, धन से सेवा करके प्राप्त की हैं। इन उपाधियों के जाली प्रमाण–पत्र भी देखे गये हैं।

इन उपाधियों की उपलब्धि पर ही सबको विद्वान् समझ लेना उचित नहीं है। क्योंकि अनेक डिग्रीधारियों के क्रियात्मक जीवन में दैनिक गतिविधियों को देखकर आश्चर्य होता है। जो लोभी, लालची है, ईर्ष्या, द्वेष रखता है, सत्य बोलने से डरता है, अंहकारी है, तब सहसा कहना पड़ता है कि यह कैसा विद्वान है?

इसलिए शास्त्र अनुकूल विद्वान् वह है जो देवता है। चारों वेदों को पढ़कर रावण की तरह राक्षस को विद्वान नहीं कह सकते। विद्या प्राप्त करने पर यदि आचरण शुद्ध नहीं है तब उससे अनपढ़ कबीर, तुलसी आदि उत्तम हैं जिनकी रचनाओं को पढ़कर कई लोग पी.एच.डी. कर रहे हैं। अतः विद्वान उसको मानना चाहिए जिसका शुद्ध सत्य आचरण है जिसकी देववृत्ति है।

देवतागण परोपकार की भावना रखते हैं और सदैव परमहित की बात सोचते हैं। सुर–असुर संग्राम में देवता ही संगठन बनाकर विजय प्राप्त करते हैं। यदि देवता नहीं बन सकते तो मनुष्य बनकर तो रहो, परन्तु राक्षस मत बनो।

देवराज आर्य मित्र डबल्यू जे–428,
हरि नगर, नई दिल्ली–64

****

ऋषिः स यो मनुर्हितः

(वह ऋषि है, जो जनहित चिंतन करता रहता है)

''प्रत्यर्धिर्यज्ञानामश्वतयो रथानाम्'
ऋषिः स यो मनुर्हितो विप्रस्य यावयत् सखाः।।''
(ऋग्वेद 10.26.5)

वैसे तो ऋषि सुहृद्, सर्वहित कर्ता ईश्वर को कहते।
जो यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म प्रेरक, पूरक बन सुख देते।।

पर, वैदिक मंत्रों के द्रष्टा भी तो ऋषि कहलाते हैं।
'यास्क' वचन **''ऋषियो मंत्र दृष्टारः''** भी ऐसा दर्शाते हैं।।

वे ऋषि **'यज्ञानाम्'**–यज्ञ अरु सर्व श्रेष्ठतम कर्मों को।
''प्रत्यर्धि'' हैं सदा बढ़ाते, पूरक बन सत्धर्मों को।

यज्ञ कर्म करते रहने से, यज्ञ रूप जीवन उनका।
सकारात्मक, शुचि, सुभाव, सदकृत प्रेरक बनता सबका।।

जैसे **''रथानाम्''**–सुरथों में **''अश्वहया''**– उन अश्वों से।
जो रह रथ में जुते,चलाते रथ, खुद चल आगे सबसे।।

वैसे ही ऋषि भी सदैव, सद् कार्यों में आगे बढ़के।
योगदान करते, सबको उत्साहित हैं रहते करते।।

''स ऋषिः''– वह ऋषि है **यः** जो कि **''मनुर्हितः''**–जनहित चिंतन।
करता रहता, सबका सबविधि जिससे होवे सुख वर्धन।।

उसकी चाहत रहती है–सब जन ऐसे शुचि कर्म करें।
जिससे हो वे पार दुखों से मोक्षानन्दम् को वरलें।।

ऋषि करता आह्वान सभी का, सभी सुपथ को अपनाएें।
पाप कर्म तज भावी दुर्गति से बचके सब सुख पाएें।।

वह **''विप्रस्य''**–बुद्धिमानों, मेधावी, आप्त जनों का।
सन्त, अग्रणी, ज्ञानी सदपथदर्शक सुधारकों का।।

'सखा'–मित्र है और **''यावयत्''** सबकी दुख–पीड़ाहर्ता।
अरु सबको सद्कृत रत रहने को प्रेरित रहता करता।।

दयाशंकर गोयल
1554 डी.सुदामा नगर, इंदौर
पिन–452009 (म.प्र.)

महात्मा सांई बाबा की वास्तविकता

स्मार्त धर्मगुरु शंकराचार्य महाराज स्वरूपानंद जी बाल ब्रह्मचारी संन्यासी नहीं होने के कारण वे जगद्गुरु शंकराचार्य के पीठ के अधिकारी नहीं हो सकते। महात्मा साईबाबा को ईश्वर समझना महापाप है। अज्ञान है।

वेदो के आधार पर कोई ईश्वर नहीं होता भगवान श्री राम, श्रीकृष्ण जी महापुरुष थे, ईश्वर नही थे।

महात्मा सांई बाबा कौन थे? इन प्रश्न पर कोई हिन्दू विचार नही करता वह विचार करेगा तो निश्चित आर्य बन सकता है।

स्मार्त धर्माचार्य स्वामी पूर्णानंद सरस्वति जी ने श्रीमद् दयानंद को संन्यास आश्रम की दीक्षा दी थी।

स्वामी पूर्णानदं जी के प्रेरणामात्र से स्वामी दयानंद जी ने आर्यवर्त भारत का भ्रमण करके तत्कालीन भारतीय राजाओं को जागृतकर स्वतंत्रता समर हेतू संगठित किया था।

श्रावण शुक्ल प्रतिपदा संवत 1913 में स्वामी दयानंद जी के संयोजकत्व में आर्यावर्त भारत के 2150 राजवाडों के राजाओं ने आजाद हिन्द सरकार की स्थापना करके राज प्रधान मंडल का गठन किया था

आजाद हिन्द सरकार का स्वतंत्र भारत का सम्राट् राष्ट्रप्रमुख नाना साहब पेशवा थे तो प्रधान राव गोपाल देव (रेवाडी नरेश) थे तो उप प्रधान राजा नाहरसिंह (शाहपूरा नरेश) थे। सरकार के सरक्षण विभाग प्रमुख रामचंद्र तात्या टोपे जी थे तो उन के सहयोगी उपप्रमुख राजा बाबू कुँअरसिंह जी (जगदीशपुर नरेश) थे।

मगध देश में दक्षिण विहार में पलामु राज्य था। वर्तमान सासाराम जनपद में जगदीशपुर राज्य था वे मराठा साम्राज्य के सम्राट छत्रपति तथा पेशवा से एक निष्ठ थे उन्होंने 1856 को आजाद सरकार में वे उप संरक्षण–प्रमुख थे उन्होंने 1857 की क्रांति में गया से शेराघाटी तक तथा मधूबनी से हजारीबाग तक राजा बाबू कुँअर सिंह जी ने अंग्रेज़ो के दाँत खट्टे किये थे।

शेरघाटी युद्ध में मेजर नील के हाथों जबरदस्त परास्त होकर जगदीश पुर नरेश बाबू कुँअर सिंह भूमिगत हुए। गद्दारी के चलते वह जगदीशपुर पर आधिकार कर नहीं सके वह भूमिगत होकर स्वामी पूर्णानंद जी के अनुज्ञा से वे वामणराव जोशी पराण्डकर जी के संग दख्खण महाराष्ट्र पंहुचे।

आजाद हिन्द सरकार का भूमिगत राष्ट्रध्वज नाना साहब पेशवा की पंचवटी नाशिक के स्वामी नरसिंह परमहंस के रुप में विराजमान नाना साहब पेशवा की भेंट कर जगदीश पुर नरेश सांई बाबा नाम धारण कर के शिर्डी पंहुचे। उन के भक्त के रुप में शिर्डी निवासी क्रांतिकारी शिर्डी मौजूद थे उनके आधार से वे वहाँ सिद्ध पुरुष के रुप में प्रकाशित हुए जो आज हज़ारों भक्तों के श्रद्धा स्थान बन बैठे।

सांई बाबा जी को उन के भक्तों ने महिमा मंडित किया वे जगदीशपूर के महाराजा थे उन का सीदा सम्पर्क तात्या टोपे तथा राव गोपाल देव जी से था उनका संवाद संदेश वाहक द्वारा निरंतर होता रहा। अब उनके भक्त उन्हें ईश्वर समझते हैं। उन का आध्यात्मिक अज्ञान तो है। उनको भूमिगत क्रांति नायको का थोड़ा सा भी इतिहास ज्ञात होता तो आज की स्थिति उत्पन्न नही होती थी।

स्वामी उमाशंकर सांख्यान्
फोन न.08055445847

****

thearyasamaj.org

कहीं हम आतंकवाद के कलंकित समर्थकों को भूल न जाएँ!

● हरिकृष्ण निगम

7 मार्च 2006 का वह काला दिन! वाराणसी के संकटमोचन मन्दिर व छावनी में एक साथ दो बड़े विस्फोट हुए थे जिनमें 21 निर्बोध लोगों की मृत्यु हो गई और अनेक आहत हो गए। उसी दिन एक तीसरा भयावह टाइम बम दशाखमेध पुलिस थाने के अन्तर्गत गोदोलिया के जमुना फाटक के निकट भी लगाया गया था। यह सारे बम खाना बनाने के प्रेशर कुकर में छिपाकर रखे गए थे जिसने देश को चौंका दिया था। वाराणसी पुलिस ने जांच के बाद निष्कर्ष निकाला था कि यह कुख्यात आतंकवादी 'हूजी' का सुनियोजित षड्यंत्र था। जैसे उत्तरप्रदेश एस.टी.एफ' ने 5 अप्रैल 2006 को इस हादसे के सरगना जो इलाहाबाद की एक मस्जिद का वलीउल्लाह नामक इमाम था उसे गिरफ्तार कर लिया।

अब उत्तर प्रदेश की सरकार और कुछ अंग्रेज़ी समाचार पत्रों की आतंकवादियों के बचाव में खुलकर सामने आने की कवायद भी शुरू हो गई थी। मुख्य आरोपी 'हूजी' के आतंकवादी शमीम अहमद के लगे आरोपों की वापस लेने की बात उठने लगी। यद्यपि पुलिस स्पष्ट कर चुकी थी कि वलीउल्लाह, जो देववन्द का विद्यार्थी था, इस हादसे में तीन बंग्लादेशियों की सहायता ले रहा था। पर उसके बचाव में सा.पा. के नेता भी खड़े थे। वलीउल्लाह दूसरा जेल में था यद्यपि तीनों बंग्लादेशी फरार हो चुके थे। यद्यपि दिसम्बर 2006 की पुलिस के आरोप पत्र में शमीम का भी नाम था पर वह भी उनकी गिरफ्तारी से बाहर हो चुका था। *'इण्डियन मुजाहिद्दीन'* के कईं सदस्यों की यू.पी. पुलिस द्वारा गिरफ्तारी के बाद सन् 2008 में वाराणसी के विस्फोटों की पृष्ठभूमि साफ हो चुकी थी। 'हूजी' और 'आई–एन के अपराधी मोहम्मद' सैफ का नाम 19 सितम्बर 2008 को दिल्ली में हुई बाटला हाउस की मुठभेड़ के संदर्भ में फिर आया था। तब मोहम्मद सैफ ने वाराणसी के गौदोलिया के बमविस्फोटों में भी अपनी साजिश को मैजिस्ट्रेट के सामने स्वीकार किया था। घोषित अपराधियों को ज़मानत दिलाने व उनके विरूद्ध मुकदमा वापिस करने की गुहार लगाने वाले तत्कालीन नेताओं व अंग्रेज़ी पत्रों के सम्पादकों को आज भी पहचाना जा सकता है। क्या आज की सरकार न्याय प्रक्रिया को स्वतंत्र कर ऐसे लोगों को दण्डित करने का प्रयास नहीं करेगी? जिस देश की सरकार शत्रु और मित्र को पहचानने में भूल करती है और मात्र राजनैतिक रूप से समयानुकूल असत्य ही दोहराती है उसे उस भूल का दूरगामी परिणाम भुगतना ही पड़ता है। हम भूलें नहीं, कि हर हिन्दू के हृदय में वाराणसी का वही स्थान है जैसा इतर धर्मावलम्बियों का यरूशलम या काबा का सुरक्षा बलों का मनोबल तोड़ने की साजिश में लगा हर व्यक्ति, वह कोई भी क्यों नहीं हो, राष्ट्रद्रोही है।

कदाचित् हजारों वर्षों पहले से अब तक अस्तित्व में रही काशी या बनारस दुनिया में वह अकेला प्राचीन नगर है जब बाकी विश्व गुमनामी के पथविहीन अँधेरे जंगलों में खोया हुआ था। वैदिक, शैव, वैष्णव या विष्णु के अवतार माने जाने वाले अवलोकितेश्वर गौतम बुद्ध के हिन्दू–बौद्ध धर्मावलम्बी इसे अपनी आध्यात्मिक निष्ठा व अन्तरात्मा का ही हिस्सा मानते रहे हैं। फिर उन्हें किसी भी तरह यहाँ आतताईयों, विदेशी आक्रान्ताओं या आज के किसी आतंकवादी द्वारा पददलित करने की कल्पना भी ईशनिन्दा से कम नहीं लग सकती है।

भगिनी निवेदिता ने सन 1905 में लिखे अपने इतिहास ग्रंथ *'फुटफाल्स ऑफ इण्डियन हिस्ट्री'* में बनारस पर लगभग 40 पृष्ठों का एक अध्याय लिखा था। उनके अनुसार दक्षिण पूर्वी एशिया के मानस–पटल पर जिस तरह आदि काल से बनारस शब्द एक अनोखे सम्मोहन की तरह अंकित रहा है। वह समय आस्था का स्वर्णयुग का जब हिन्दू बौद्ध आस्था के हर आराध्य एक–दूसरे से स्थापत्य, मूर्त्तिकला, भित्तिचित्रों पुरातन साहित्य, आख्यानों, मृग उद्यानों विश्वविद्यालयों के साथ मन्दिरों व चैत्यो में इस तरह परस्पर गुँथे थे कि चाहे सिकन्दर हो, शक, हूण अथवा कुषाण हो, या मुस्लिम आकान्ता हो वे भी, मात्र बनारस को समस्त हिन्दू सभ्यता के केन्द्र के रूप में निशाना बनाते थे। यहाँ तक कि जब कनिष्क कुषाण वंश का 878 ईस्वी से 944 ईस्वी तक सर्वाधिक बड़ा सम्राट् था तब उसकी सीमा दक्षिण में साँची और पूर्व में बनारस तक फैली थी। उत्तर में यद्यपि पुरुषपुर (या आज का पेशावर) उसकी राजधानी थी। पर बनारस उस समय भी फलफूल रहा था। राजा हर्ष के बाद से कन्नौज के साथ साथ बनारस उत्तर भारत का केन्द्र बिन्दु बन चुका था। हिंदुओं की आत्मा में बसने वाले ऐसे बनारस को यदि आज फिर कोई हिंसा की चुनौती देता है तो हिन्दुओं को प्रतिशोध का अधिकार देना ही होगा।

ए. 1002 पंचशील हाईट्स
महावीर नगर कान्दिवली मुम्बई–400067

मोक्ष हेतु देहदान या अंगदान का संकल्प लें

● कृष्णमोहन गोयल

दातव्यमिति यद् दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद् दानं सात्त्विकं स्मृतम्।। गीता (17–20)।

अर्थात भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भागवद्गीता में निष्काम भाव से दिए गए दान के फल का उपदेश देते हुए कहा है कि देश, काल और पात्र को देख कर जो दान ऐसे व्यक्ति को दिया जाता है जिससे बदले में कुछ भी उपकार की आशा न हो, उस दान को सात्विक दान कहते हैं।

अंगदान महत्त्वपूर्ण क्यों हैं?

हर वर्ष हजारों व्यक्ति हृदय की गति रूक जाने, गुर्दे, जिगर या पाचक ग्रन्थि के खराब हो जाने या फिर खून की कमी हो जाने के कारण मर जाते हैं। बीस लाख से भी अधिक लोग, जिनमें अधिकतर बच्चे होते हैं, आँख के पारदर्शी पर्दे की क्षति की वजह से अंधेपन का शिकार हो जाते हैं। हम उनको अपनी मृत्यु उपरान्त अपने स्वस्थ अंगों को दान देकर जान बचा सकते हैं और बहुत से नेत्रहीनों को आँखें मिल सकती हैं। केवल हमारे मस्तिष्क को छोड कर हमारे शरीर के अन्य सभी अंगों को बदला जा सकता है। ऊतक जैसे चमड़ी और हड्डी का फिर से निर्माण कर ठीक किया जा सकता है।

अंगदान कौन कर सकता है?

कोई भी वयस्क व्यक्ति चाहे वह किसी भी जाति, धर्म, वर्ण या लिंग का हो अपने अंग दान कर सकता है। 18 वर्ष से कम आयु के व्यक्ति अपने माता–पिता की सहमति से अपने अंगदान कर सकते हैं।

कौन–से अंगों का दान किया जा सकता है?

हृदय, हृदय के वाल्व, फेंफड़े, जिगर, पाचक ग्रन्थि, गुर्दे, आँखें, चमड़ी, अस्थि–मज्जा, जोड़ने वाले ऊतक, कान का मध्य भाग और रक्त की नाडियाँ दान में दी जा सकती हैं। आप अपना सारा शरीर भी मेडिकल अनुसंधान और शिक्षा के लिए दान में दे सकते हैं।

अंगदान कब किया जा सकता है?

जीवन काल में – आप अपने जीवन काल में अपने शरीर के किसी भी अंग या टिशू को अपने नजदीकी खून के रिश्तेदार (भाई, बहन, माता–पिता और बच्चों) को दान कर सकते हैं। आप अपने जीवन में भी अपने एक गुर्दे, जिगर या पाचक ग्रन्थि के भाग या अस्थि–मज्जा का दान देकर भी सामान्य जीवन व्यतीत कर सकते हैं। अपने खून का दान तो किसी भी स्वस्थ व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है। आपका यह खून न केवल किसी नजदीकी रिश्तेदार द्वारा ही बल्कि किसी भी व्यक्ति द्वारा, जिससे आपका खून मेल खाता हो, इस्तेमाल या काम में लाया जा सकता है।

मृत्यु पश्चात : मेडिकल प्रोफेशन में दो प्रकार से हुई मृत्यु–दिमागी तौर से हुई मृत्यु और हृदय–गति रूक जाने से हुई मृत्यु–के भेद को ध्यान में रख कर अंग के प्रत्यारोपण का फैसला किया जाता है। दिमागी तौर से मृत व्यक्ति के अंग लेना ज्यादा अच्छा समझा जाता है क्योंकि उसकी हृदय–गति उसके अंगों की क्षमता को काफी समय के लिए कायम रखती है। हृदय–गति के रूक जाने से हुई मृत्यु में अंगों के प्रत्यारोपण के लिए बहुत कम समय होता है क्योंकि शीघ्र ही अंगों की क्षमता समाप्त हो जाती है।

अक्सर दिमागी तौर से व्यक्ति की मृत्यु दुर्घटना में सिर पर गहरी चोट लगने से होती है या फिर दिमागी रसौली की वजह से अस्पतालों के आई.सी.यू. में होती है। दिमागी तौर पर हुई मृत्यु का डाक्टरों की टीम के द्वारा मरीज के कई प्रकार के टैस्ट करने के बाद कानूनी तौर पर प्रमाणित किया जाना जरूरी है। कृपया इसमें समय का विशेष ध्यान रखें, 2 से 4 घंटे के बीच मेंही अंग प्रयोग में लाए जा सकते हैं।

अंगदान करने की व्यवस्था कैसे करें?

अगर आप अपनी मृत्यु के बाद किसी भी अंग का दान करना चाहते हैं तो अपने नजदीक के किसी अस्पताल से या फिर अपने डाक्टर से जानकारी हासिल करें कि आप किसी तरह अपने अंगदान करने के लिए रजिस्ट्रेशन करवा सकते हैं और अंगदान के फैसले की जानकारी आपके परिवार के सदस्यों को दो ताकि वे आपकी मृत्यु के समय आपकी इच्छा पूरी कर सकें।

अगर आप अपना सारा शरीर दान में देना चाहते हैं तो आपको अंगदान के लिए रजिस्ट्रेशन करवाते समय इस बात का विशेष रूप से उल्लेख करना होगा और अपने परिवार के सदस्यों को इस बात की जानकारी भी देनी होगी।

प्रायः अंगदान के उपरान्त अस्पताल आपके शरीर को आपके परिवार को वापस कर देते हैं जिससे आपके शरीर का आपके धर्म के रीति–रिवाज के अनुसार अन्तिम संस्कार किया जा सके।

इस प्रकार आपके दोनों हाथों में लड्डू हैं। आप अंगदान करके संसार को तो लाभ पहुँचाएँगे ही और मोक्ष को प्राप्त करने के अधिकारी भी बन जाएँगे।

113 बाजार कोट
अमरोहा 244221

thearyasamaj.org

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11/6066/2012-14
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103/2012-14
POSTED AT N.D.P.S.O. ON 17-18/9/2014
रजिस्ट्रेशन नं. आर० एन० आई० 39/57

हंसराज महिला महाविद्यालय में यज्ञ तथा वेद-कथा

हंसराज महिला महाविद्यालय, जालन्धर की ओर से वैदिक–परम्परा श्रृंखला के अन्तर्गत आर्य समाज मन्दिर, विक्रमपुरा, जालन्धर में यज्ञ कार्यक्रम का आयाजन किया गया जिसमें कॉलेज प्राचार्या डॉ. रेखा कालिया भारद्वाज, कॉलेज की प्राध्यापिकाओं तथा छात्राओं ने बढ–चढ़ कर भाग लिया।

इस अवसर पर श्री प्रद्युम्न तथा छात्राओं ने 'मन चंचल चल ओ३म् का सिमरन किया करो' सुमधुर भजन गाकर उपस्थिति को मन्त्र–मुग्ध कर दिया। संस्कृत–विभाग की डॉ. श्रीमती रमा चौधरी ने मंच का संचालन करने के साथ–साथ कुछ वेद–मन्त्रों के अर्थों को सरल ढंग से समझाया।

वेद–कथा का विशेष कार्यक्रम

हंसराज महिला महाविद्यालय, जालन्धर के सभागार में 2 सितम्बर, 2014 को आर्य समाज विक्रमपुरा द्वारा करवाए जा रहे वेद–कथा के विशेष कार्यक्रम का आयोजन किया गया जिसमें टीचिंग स्टाफ तथा विद्यार्थियों ने बढ़–बढ़ कर भाग लिया।

इस अवसर पर नई दिल्ली से पधारे वैदिक विद्वान श्री वेद प्रकाश श्रोत्रीय जी ने महर्षि दयानन्द जी द्वारा किए किए गए अद्भुत कार्यो की प्रशंसा की तथा विशेष रूप से कन्याओं तथा स्त्री' जाति पर किए गए उपकारों की चर्चा की।

कन्याओं का महत्त्व बताते हुए उन्होंने इस बात पर हर्ष व्यक्त किया कि बेटियां विभिन्न प्राकर की विद्याओं में निष्णात होकर अपने भविष्य को उज्जवल कर रही हैं।

उन्होंने यह भी बताया समय निकाल कर सन्ध्या–वेलाओं में इश्वरोपासना अवश्य करनी चाहिए।

उन्होंने इस बात पर दु:ख व्यक्त किया कि महर्षि दयानन्द ने जिस अविद्या के अन्धकार को दूर किया था, आज वही अन्धकार फिर पांव पसार रहा है जो देश के लिए दुर्भाग्य की बात है।

श्री जगत वर्मा श्री राजेश अमर प्रेमी तथा श्री प्रद्युम्न ने भजन गाकर उपस्थित आर्यजनों को मन्त्रमुग्ध कर दिया।

इस अवसर पर प्रिंसीपल डॉ. बी.बी शर्मा (प्रधान आर्य समाज विक्रमपुरा) प्रिंसीपल इन्द्रजीत तलवाड़ (मन्त्री) तथा प्रिंसीपल रवीन्द्र शर्मा (कोषाध्यक्ष) श्री अमरजीत खन्ना, डॉ. जीवन आशा, डॉ. ऋतु तलवाड़, श्री रणजीत आर्य तथा अन्य गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे।

हंसराज मॉडल स्कूल, पंजाबी बाग में मनाया गया संस्कृत सप्ताह

हंसराज मॉडल स्कूल, पंजाबी बाग नई दिल्ली में आर्य युवा समाज के तत्त्वावधान में संस्कृत सप्ताह का आयोजन किया गया। इस दौरान प्रतिदिन प्रातः काल 'आर्य युवा समाज' के सदस्यों द्वारा विद्यालय की यज्ञशाला में देवयज्ञ सम्पन्न किया गया तथा सी.बी.एस.ई. द्वारा निर्दिष्ट संस्कृत की गतिविधियाँ जैसे– लघुभाषणम्, एप निर्माण, निबंध लेखन, श्लोक–अन्त्याक्षरी आदि प्रतियोगिताएँ आयोजित की गईं। विद्यालय के सभागार में 'संस्कृत–सप्ताह–समारोह' का भव्य आयोजन किया गया। आर्य युवा समाज के सदस्यों ने संगठन सूक्त के गायन से समारोह का शुभारंभ किया। तत्पश्चात् संस्कृत समाचार–वाचन, भरतनाट्यम आदि कार्यक्रम प्रस्तुत किए गया। संस्कृत भाषा में 'युवा संसद' का आयोजन विशेष आकर्षण का केन्द्र रहा। इस अवसर पर दिल्ली संस्कृत अकादमी के सचिव डॉ. धर्मेन्द्र कुमार मुख्य अतिथि के रुप में तथा संस्कृत के राष्ट्रकवि पद्मश्री डॉ. रमाकान्त शुक्ल विशिष्ट अतिथि के रूप में विराजमान थे। दोनों विद्वानों ने आयोजन की सराहना की तथा बच्चों को संस्कृत का महत्व समझाया। विद्यालय की प्रधानाचार्या श्रीमती रीता राजन कुमार ने उस तरह की गतिविधियों को बढावा देने के लिए अध्यापकों व विद्यार्थियों से अपील की।

डी.ए.वी. बृज विहार में मन्त्रोच्चारण से मनाया गया अध्यापक दिवस

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल बृज बिहार गाजियाबाद में "अध्यापका दिवस" पर विशेष यज्ञ का आयोजन किया गया जिसमें विशेष मन्त्रों को सम्मिलित किया गया, ये मन्त्र अथर्व वेद के 12वें काण्ड के "पृथ्वी सूक्त" के रूप में जाने जाते हैं।

प्रातः यज्ञ, भजन एवं प्रवचन का क्रम रहा। प्रवचन करते हुए विद्यालय के धर्माचार्य ने विद्यार्थियों के जीवन को भवन की नींव के रुप में उद्धृत कर कहा कि जिस भवन की नींव मजबूत होती है वह भवन लम्बे समय तक इस विराट आसमान की शोभा बढ़ाता है और जिस भवन की नींव कमज़ोर होती है वह भवन कमज़ोर बना रहता है तथा इसके ध्वस्त होने का भय भी बना रहता है।

आचार्य श्री ने बताया कि गुरुदेव रविन्द्रनाथ टैगोर ने कहा था कि अध्यापक का जीवन उस दीपक की तरह है जो स्वयं जलकर विद्यार्थियों के जीवन को प्रकाशित करता है।

इस अवसर पर छात्रों ने गुरुवन्दना एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किया।

कार्यक्रम के अन्त में प्रधानाचार्या ने कर्तव्य बोध की दिशा मे कुछ वचन कहे एवं विद्यार्थियों में सतत जागरुकता बनाये रखने की प्रेरणा की।

मुद्रक व प्रकाशक – **एस.के.शर्मा,** सभा मंत्री द्वारा **मदन गोयल** के प्रबंध में **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 से प्रकाशित। स्वामित्व – आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 (दूरभाष : 23362110, 23360059) सम्पादक – **श्री पूनम सूरी**